Ācārya Vādirāja's

Ekībhāva Stotra

(Anecdotal story – quelling leprosy)

आचार्य वादिराज विरचित

एकीभाव स्तोत्र

(माहात्म्य कथा - कुष्ठ-रोग निवारण)

Divine Blessings:
Ācārya* 108 Viśuddhasāgara *Muni

VIJAY K. JAIN

Ācārya Vādirāja's

Ekībhāva Stotra

(Anecdotal story – quelling leprosy)

आचार्य वादिराज विरचित

एकीभाव स्तोत्र

(माहात्म्य कथा – कुष्ठ-रोग निवारण)

Ācārya **Vādirāja's**

Ekībhāva Stotra

(Anecdotal story – quelling leprosy)

आचार्य वादिराज विरचित

एकीभाव स्तोत्र

(माहात्म्य कथा - कुष्ठ-रोग निवारण)

Divine Blessings:

Ācārya* Viśuddhasāgara *Muni

Edited and Translated by:

Vijay K. Jain

Front cover:

Depiction of the image of
Lord Ādinātha,
the first *Tīrthaṅkara,*
at the sacred place of pilgrimage,
Shri Digambara Jain Bada Mandir,
Hastinapur (U.P.).

Pic by Vijay K. Jain (2004)

Ācārya Vādirāja's

Ekībhāva Stotra

(Anecdotal story – quelling leprosy)

आचार्य वादिराज विरचित

एकीभाव स्तोत्र

(माहात्म्य कथा – कुष्ठ-रोग निवारण)

Edited and Translated by:
Vijay K. Jain

Copyright © 2024. Vijay Kumar Jain

ISBN: 978-93-340-9230-1
Rs. 250/-

Published 2024, by:
Vijay Kumar Jain
B-13, MDDA Colony, Dalanwala, Dehradun-248001 (Uttarakhand), India

Printed at:
Vikalp Printers
Anekant Palace, 29 Rajpur Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand), India
E-mail: vikalp_printers@rediffmail.com

DIVINE BLESSINGS

मंगल आशीर्वाद -

परम पूज्य दिगम्बराचार्य श्री विशुद्धसागर जी मुनिराज

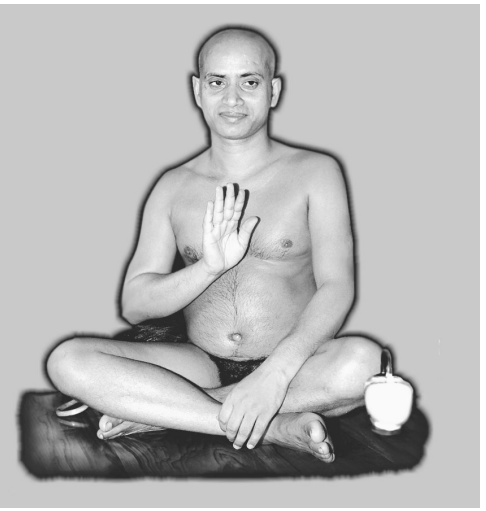

विश्व की आद्य-संस्कृति; दिगम्बर जैन श्रमण-संस्कृति ने विश्व-हितार्थ वस्तु-व्यवस्था, वस्तु-स्वभाव, वस्तु-स्वतन्त्रता की प्ररूपणा कर सम्पूर्ण लोक को आलोकित किया है।

पर की पराधीनता स्वीकारना आत्म-धर्म नहीं है। प्रत्येक वस्तु का तद्-भाव है स्वभाव में, प्रत्येक वस्तु का अतद्-भाव है पर में। प्रत्येक वस्तु परिणामी है पर्याय दृष्टि से, प्रत्येक वस्तु अपरिणामी है स्व-द्रव्य दृष्टि से। व्यवहार से निमित्त पर कर्ता का आरोपण किया जाता है, परन्तु परमार्थ से उपादान ही सदा कर्ता रहता है। अन्य, अन्य के सहकारी अवश्य होते हैं, परन्तु कार्यकारी तो स्व-द्रव्य का उपादान ही होता है। इस परम-सत्य को प्रत्येक प्रेक्षाशील-पुरुष को समझना चाहिए। प्रज्ञा का प्रयोग बाह्यार्थ में ही न रहे, अपितु आत्मार्थ में भी प्रज्ञा का प्रयोग करना चाहिए।

विशुद्ध-बुद्धि से युक्त होकर अन्तरंग-बहिरंग प्रमेयों का, निज-प्रमाण से निर्णय कर, भगवद्-भक्ति के आनन्द-सरोवर में निमग्न होकर, मान रोग का उपचार करना चाहिए। श्रीजिन देव की अन्तरंग-बहिरंग विभूति का दर्शन मानियों के मान रोग का उपचार है।

अरिहंत देव, पञ्चपरमेष्ठी की भक्ति के प्रभाव से पाप का आचरण करने वाला श्वान भी देवत्व को प्राप्त हो गया। अहो आश्चर्य! जिन-भक्ति की महिमा विराट् है। प्रभु नाम मन्त्रोच्चारण के श्रवण मात्र से एक श्वान स्वर्ग का देव हो गया, तो फिर जिन-भक्ति से युक्त मणि-माला से जाप्य करने वाला दु:खों से मुक्त क्यों नहीं होगा? अर्थात् अवश्य ही होगा।

जैन-दर्शन में भक्ति की सम्पूर्ण-धाराओं पर भक्ति-शास्त्र सृजित हैं। स्वामी-सेवक भक्ति के काल में भक्त भगवान् को स्वामी बनाकर स्वयं को सेवक के रूप में देखता है। सखा के रूप में जैसे मित्र मित्रों से बात करता है वैसे ही भक्त भी भगवान् से बात करता है। आशीर्वाद के रूप में; भगवान् के श्रीचरणों में स्वयं की आत्मा पावन हो जाए, ऐसी मंगलाशीष की भावना से युक्त होकर भक्ति करता है।

व्याज-निन्दा स्तुति दिखती निन्दा जैसी है, पर वास्तव में होती है चरण-कमलों की स्तुति। जैसे- प्रभु; आप बाल-ब्रह्मचारी हो; पर कैसे बाल ब्रह्मचारी? वर्धमान स्वामी! आपने तो मुक्ति-कन्या की प्राप्ति हेतु कठोर तप किया। विभिन्न दृष्टिपातों से भक्ति-साहित्य जैन दर्शन में प्राप्त है। स्तुति में न्याय-दर्शन की पद्धति जैन-आगमों में प्रचुर रूप से उपलब्ध है। आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी इस विद्या के सिद्धहस्त आचार्य हैं।

इसी महान दिगम्बर जैनाचार्यों की दीर्घा में बहु-विश्रुत आचार्य श्री वादिराज सूरि हैं, जिन्होंने न्याय, दर्शन, नीति, साहित्य के साथ भक्ति-साहित्य पर बहुत ही सुन्दर-भाषा में अतिशय-पूर्ण **'एकीभाव स्तोत्र'** की रचना की है। आचार्य महाराज पर जब स्वयं रोग-परीषह ने उपसर्ग किया, तब आचार्य प्रवर ने **'एकीभाव स्तोत्र'** की रचना कर सम्राट एवं मंत्रियों को चमत्कार दिखाया। **'एकीभाव स्तोत्र'** का पाठ करते ही कुष्ठ रोग शान्त होकर सम्पूर्ण शरीर कंचन-काय हो गया; फलत: जिन शासन का महान् उद्योतन हुआ। ऐसा महान् स्तुति-काव्य जो धर्म, न्याय, नीति, भक्ति, सिद्धान्त का संगम है, सदा-सदा स्तुत्य है।

यह चमत्कारिक महान् स्तोत्र सम्पूर्ण विश्व का कण्ठहार बने; संस्कृत-हिन्दी ही नहीं अपितु आंग्ल भाषा-भाषी भी इसका पाठ कर भक्ति-गंगा में अवगाहन कर सकें; सम्पूर्ण लोक जैन स्तोत्रों की महिमा को जानकर मिथ्या-धारणाओं से आत्मरक्षा कर सके तथा जैन-सिद्धान्त पर दृढ़ आस्था बनाकर भूतार्थ समीचीन मार्ग का आश्रय लेकर, मृषा-मार्ग से स्वयं को पृथक् कर सके; इस पावन मंगल-भावना से युक्त होकर भव-भीरु, श्रीजिन-चरण शरणानुरागी, प्रसन्नधिया, कुशल साहित्य-मनीषी, श्रीजिन-श्रुत-गुरु-चरणाम्बुज अनुरागी, भक्त-भ्रमर विद्वान श्री विजय कुमार जैन, देहरादून, ने **'एकीभाव स्तोत्र'** का अंग्रेजी में अनुवाद कर इसे विश्व स्तोत्र बना दिया है। उनकी यह श्रुत-साधना अनवरत चलती रहे...। तब तक, जब तक कण्ठ में प्राण हैं; तब-तक ही नहीं अपितु भव-भव तक इस द्वैत-अद्वैत भक्ति-भावना के प्रसाद से वे स्वात्मसिद्धि को प्राप्त करें, यही मंगल-भावना एवं शुभाशीष...।

- दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनि

पावन वर्षायोग
नांदणी (महाराष्ट्र), भारत
12 अगस्त 2024

* * *

PREFACE

BRIEF LIFE-STORY OF LORD ĀDINĀTHA (LORD ṚṢABHADEVA) (THE FIRST *TĪRTHAṄKARA)*

The Birth of Lord Ādinātha

When one-eighth of a *palya* was remaining of the third period, known as *suṣamā-duṣamā,* in the spoke of time of the present descending half-cycle of cosmic age *(avasarpiṇī kāla)*, the felicities due to the ten kinds of special tree-like bestowers of wants *(kalpavṛkṣa)* started to progressively dwindle down and the people no more were able to live the lives of instant gratification of all their wants, and sheer enjoyment. They started to worry about their sustenance and livelihood. Wise men, called *kulakara*, arose from time to time and kept on enlightening people, laying the foundation of the civilization of labour, law and order. The number of sages who thus appeared is said to be fourteen, the last of whom was Nābhirāja of the Ikṣvāku dynasty. He lived for 1 crore *pūrva* (1 *pūrva* = 84 lakh × 84 lakh years = 70560000000000 years) and his height was 525 *dhanuṣa*[*].

As the third period *(suṣamā-duṣamā)* of the present descending *(avasarpiṇī)* half-cycle was approaching its end, the illustrious Queen

---

[*] Some basic units of length measurement are as under:

24 *utsedhāṅgula*	= 1 *hātha*
4 *hātha*	= 1 *dhanuṣa* (also known as *daṇḍa* or *nāḍī*)
(1 *dhanuṣa*	≈ 5.28 ft. or 1.61 m.)
2000 *dhanuṣa*	= 1 *kosa*
4 *kosa*	= 1 *yojana*

While referring to continents, oceans and cosmic distances, Jaina cosmology employs the measure of *mahāyojana* (therein termed as *yojana* only) which equals 500 conventional *yojana*. Thus, when the Scripture refers to the diameter of Jambūdvīpa as 1 lakh *yojana*, it means 50000000 conventional *yojana* or 200000000 *kosa*.

Marudevī, wife of Lord Nābhirāja, dreamt sixteen wonderful and most auspicious dreams†:

1) She first saw a white mighty elephant the sound of whose voice was like thunder and whose trunk was moist with temple-fluid.
2) She next saw a magnificent bull, whiter than the petals of the lotus and having a beautiful form.
3) She then saw a ferocious, white lion possessing immense strength and with thick cluster of hairs on the neck.
4) She saw Goddess Lakṣmī's anointment (*abhiṣeka)* with water out of golden pitchers, by two large guardian elephants.
5) She saw two garlands of fragrant flowers over which were hovering black bees intoxicated with the fragrance.
6) She next saw the full moon surrounded by stars.
7) The seventh dream consisted in the sight of the radiant, rising sun in the east, obscuring the lustre of all other lights.
8) The eighth dream saw two fishes playing gloriously in a lovely pool of water, full of lotuses.
9) She saw two golden pitchers with lotuses on the top.
10) She saw an effulgent lake filled with water shining like liquid gold due to the floating remains of yellow lotus leaves.
11) She saw an ocean whose strong waves were breaking into small white sprays.
12) She then saw a very big, resplendent, golden throne set with bright diamonds and rubies.
13) The thirteenth dream was the sight of a jewel-bedecked heavenly plane of the devas which shone like the morning sun.
14) The next dream was the rising residence of Nāgendra, the

† Such splendid and pious dreams are seen by the Mother of every *Tīrthaṅkara* as He enters the womb, at the end of His previous incarnation.

lord of the devas of the Nāgakumāra clan.

15) She saw a very large heap of glittering jewels whose brightness illuminated the sky.

16) The last dream was the sight of a blazing, bright fire with smokeless flame.

After these sixteen dreams she saw a large, beautiful bull entering her open mouth, indicative of a pious and extraordinary soul entering her womb.

In the morning, Queen Marudevī, full of joy, narrated the sequence of her dreams to King Nābhirāja who was endowed, like all truly pious souls, with clairvoyance *(avadhijñāna)*. He foresaw the birth of a spiritual conqueror (Jina), the Lord of the three worlds. He explained to the Queen the significance of the dreams:

The mighty elephant in the first dream meant that He will be the preceptor of the preceptors, to be worshipped by the devas.

The white bull in the second dream foretold the birth of a great religious Teacher who would spread the light of knowledge.

The third dream meant that He will be strong as the lion, in overcoming all enemies.

Goddess Lakṣmī's anointment (*abhiṣeka)* in the fourth dream signified that He will be the Supreme Being in the three worlds and that the devas will perform His *abhiṣeka* at Mount Meru.

The two garlands of fragrant flowers in the fifth dream meant that He will be the Founder of true Faith whose fragrance will spread all-around.

The full moon surrounded by stars in the sixth dream prophesied that He will bring soothing peace and happiness to all beings.

The sun in the seventh dream signified that He will dispel the darkness of ignorance.

The eighth dream which saw two fishes meant that He will

bring propitious outcomes for all living beings.

The two golden pitchers in the ninth dream meant that He will possess the treasure of superior qualities, including excellent meditation.

The effulgent lake in the tenth dream signified that He will have the most auspicious form and body.

The ocean in the eleventh dream meant that He will attain superior nine accomplishments *(navalabdhi)* and omniscience.

The bejeweled, resplendent throne in the twelfth dream was indicative of His becoming the World Teacher *(Tīrthaṅkara)*.

The heavenly plane of the devas in the thirteenth dream meant that He will descend from the heaven to take birth on this earth.

The rising residence of Nāgendra in the fourteenth dream signified that He will be born with clairvoyance.

The large heap of glittering jewels in the fifteenth dream meant that He will be the embodiment of Right Faith, Right Knowledge and Right Conduct.

The smokeless fire in the sixteenth dream meant that He will burn up the entire karmas associated with His soul with the fire of pure meditation.

As the soul of Lord Ādinātha was conceived by the noble Queen, many celestial maidens came to attend on the Mother of the Lord, with great delight, at the instance of lord Saudharma (Indra) of the first heaven. They assisted the Queen in all ways and kept her cheerful and bright.

The days of pregnancy passed with many wonderful signs indicative of the growth of the Divine Child in the Queen's womb. After nine months and seven days of pregnancy, the birth of the Lord of the Lords, *Bhagavān* Ṛṣabhadeva was marked with many wonderful and divine signs including the cleaning of the air in all directions, filling up of the entire universe with a wave of peace – even the denizens of hells experiencing its electric thrill for a passing moment – and the

quivering of the thrones of the lords of the devas announcing the birth of the Most Worshipful Supreme Lord.

Lord Ādinātha was born in Ayodhyā, on the ninth day of the dark half of the month of Caitra – *caitra kriṣṇa navamī*.

He was born in the third period *(suṣamā-duṣamā)* of the present descending *(avasarpiṇī)* half-cycle when 84 lakh *pūrva*, 3 years and 8½ months were remaining for the start of the fourth period *(duṣamā-suṣamā)*.

His height, when He grew up, was 500 *dhanuṣa*.

The Youth and Family-life of Lord Ādinātha

Lord Ādinātha lived for a total of 84 lakh *pūrva* out of which 20 lakh *pūrva* were spent as youth *(kumārakāla)*, and 63 lakh *pūrva* as the King *(rājyakāla)*.

Lord Ādinātha grew up as the most worthy and handsome youth on earth. Being rid of all worldly attachment from birth, the Lord was enchanted only by two females: one, Sarasvatī (goddess of learning) and two, Kīrti (goddess of renown). However as per the wish of His revered father, He agreed to marry two most beautiful and accomplished maidens, Yaśasvatī and Sunandā.

One night as Queen Yaśasvatī conceived, she saw some wonderful dreams. She saw: 1) the whole world being swallowed up; 2) the Sumeru mountain; 3) the sun and the moon; 4) a lake dotted with swans, and 5) an ocean agitated with waves. The following morning, these dreams were interpreted by her husband, Lord Ādinātha, as follows: 1) her son would be the lord of the whole world; 2) he would be a king-of-kings *(cakravartī)*; 3) the sun is indicative of his splendour and the moon of his charm and grace; 4) his body would be endowed with all the most excellent qualities and marks; and 5) being endowed with the last-supreme-body *(carama-śarīrī)*, he would cross the ocean of worldly-existence, i.e., he would attain liberation.

In the fullness of time a son was born to her on the ninth day of the

dark half of the month of Caitra – *caitra kriṣṇa navamī*; same constellations of stars as at the time of the birth of Lord Ādinātha. Eldest of all sons and daughters, he was given the name Bharata.

Queen Yaśasvatī gave birth to ninety-nine more sons after Bharata; all endowed with extreme splendour, and with the last-supreme-body *(carama-śarīrī)*. She also gave birth to a daughter, named Brāhmī.

The Lord's second wife, Queen Sunandā gave birth to a deva-like – the first Kāmadeva (god of love) of the time – son, named Bāhubalī, and a daughter, named Sundarī.

Lord Ādinātha knew, untaught, all sciences and arts. He imparted suitable education to all His sons and daughters. He taught the alphabet and the numbers to His two daughters. The alphabet came to be known as the Brāhmī script, after Brāhmī, who was the first to learn it. The two daughters speedily mastered their lessons and became efficient in all household matters, various arts and sciences including music and singing. They were much concerned about the transitory nature of the world and resolved not to marry at all.

Lord Ādinātha's Renunciation

One day Indra of the first heaven, Saudharma, arranged a dance by celestial dancers in the assembly hall of Lord Ādinātha. One of the dancers was a certain nymph, Nīlānjanā, whose clock of life had only a few moments left to run. While in the midst of the process of vigorous dance movements, she stopped, and the next instant her form 'dissolved'; she was no more! Nīlānjanā was dead. The incident reminded the assembly that the life is transient and the time on hand needs to be utilized sublimely. The fire that had been smouldering in the heart of the Lord now leaped into a flame. He turned His back to worldly pursuits, pleasures and enjoyments, and stepped on to the path of asceticism that leads one to Eternal Bliss, free from worldly cycle of births and deaths.

After taking to renunciation *(dīkṣā)*, for six months Lord Ādinātha immersed himself in holy meditation, naturally renouncing all food.

Many of those who had taken to renunciation along with Him could not bear the pangs of hunger and left the pious path of true asceticism that they had chosen to tread voluntarily. It is true that an agitated mind and asceticism do not go together. Food is essential to maintain the body; a help in observing all kinds of austerities. After six months, the Lord set out to seek some nourishment but could not succeed. (see, *Ācārya* Jinasena's *'Ādipurāṇa',* part-1, ch. 20; p. 445-447.)

Ācārya Guṇabhadra's *Ātmānuśāsanam:*

समस्तं साम्राज्यं तृणमिव परित्यज्य भगवान्
तपस्यन् निर्माणः क्षुधित इव दीनः परगृहान् ।
किलाटद्भिक्षार्थी स्वयमलभमानोऽपि सुचिरं
न सोढव्यं किं वा परमिह परैः कार्यवशतः ॥११८॥

Even Lord Ādinātha, after renouncing, like worthless blades of grass, the splendour of His kingdom and accepting austerities *(tapa)*, had to visit without self-esteem, others' houses for food, like a famished, poor man. He did not get it (in the proper manner) and had to roam like this for a long time (six months). Then, should the other men – ordinary as well as illustrious – not endure afflictions for the sake of attaining their goals?

पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलितकरः किंकर इव
स्वयं स्रष्टा सृष्टेः पतिरथ निधीनां निजसुतः ।
क्षुधित्वा षण्मासान् स किल पुरुरप्याट जगती-
महो केनाप्यस्मिन् विलसितमलङ्घ्यं हतविधेः ॥११९॥

In whose service Indra had presented himself, six months before conception, as a servant with folded hands; who himself was the creator of the world-order having taught the distressed subjects the ways of earning livelihood at the onset of the era of labour; whose son Bharata was the master of divine treasures

(cakravartī, king-of-kings); even such a great personage – Ādinātha *Tīrthaṅkara* – had to wander on earth without getting food for six months. This is amazing. It is right that no one in this world is able to transgress the ways of the evil own-fate *(daiva)*.

After completion of the six months during which Lord Ādinātha was engaged totally in the control of His activity *(yoga)*, He thought, although absolutely unmindful of the pangs of hunger, that He must show to the future ascetics *(muni, sādhu)* the correct method of partaking of food *(āhāra),* and to the householders of offering the gift of food to the ascetic. Only once in the morning He would visit, without uttering a word but adopting a specific posture indicative of His readiness to accept food, the habitations of the laity. He would spend the rest of the time in holy meditation. Six months had again passed; not knowing what the Lord was up to, men offered Him all kinds of gifts including various kinds of food, clothes and ornaments. But the Lord would turn his back, without the slightest sign of discomfort or anxiety. After six months, the Lord reached the beautiful city of Hastinapur where lived king Somaprabha, of the Kuru dynasty, and his younger brother Śreyānsa. The latter had seen during the preceding night, towards the early hours of the morning, several strange dreams. He first saw the lofty and golden Sumeru mountain. Then he saw a divine wish-fulfilling-tree *(kalpavṛkṣa)* laden with ornaments. Then he saw a lion whose neck was high. Next he saw a strong bull with soiled horns. Next he saw the sun. He then saw the moon. Next he saw an ocean with high tide. And, in the last dream, he saw the images of devas, called *bhūta,* of the peripatetic *(vyantara)* class. In the morning he was very pleased and asked his elder brother, in the presence of the wise priest of the royal court, the interpretation of these dreams. The court priest said that these dreams signify the arrival of great good luck to their royal palace. Some great soul shall visit their palace this day. Only a few hours after this, Lord Ādinātha entered Hastinapur and proceeded towards the royal palace. Śreyānsa

saw the Lord from a distance and, accompanied by his brother and others, ran out to make obeisance to Him. The sight of the Lord agitated him greatly; there was a rush of some powerful emotion; an internal commotion possessed him for the moment. He recalled, in no time, that in one of his past incarnations – as Śrīmatī, along with her then husband Vajrajaṅgha – he had offered the gift of food to two holy saints in a forest. Incidentally, the same Vajrajaṅgha had now taken birth as the first *Tīrthaṅkara,* Lord Ādinātha, present in front of him.

Full of affectionate devotion, Śreyānsa now proceeded to offer the gift of food in form of refreshing sugarcane-juice *(ikṣurasa)* to the Lord in the approved manner *(vidhi)* and with all the attributes *(guṇa)* required of the donor *(dātā)*. The devas witnessed the event with extreme delight and in approval of the noble act of offering food to the Most Worthy Recipient, rained down choice gems, flowers, and fragrant water in the royal compound. They made cheering sound of "Victory! Victory!" and beat the heavenly drums. They adored and approved profusely the pious act of Śreyānsa. All assembled praised Śreyānsa for his keen intelligence in finding out what was to be done on such an occasion and in succeeding where others had failed. Even Bharata came down to Hastinapur to congratulate him. All persons who witnessed and approved the giving of food to the Worthy Recipient earned great propitiousness. People now understood the manner in which food should be offered to an ascetic. It was the third day of the bright-half of the month of Vaiśākha – *vaiśākha śukla tṛtīyā* – when Lord Ādinātha received the gift of food at Hastinapur. Due to the supreme merit of the donor and the recipient, the food prepared became inexhaustible miraculously. The day is still commemorated with devotion and is known as *akṣaya tṛtīyā*.

This way, with nine kinds of devotion *(navadhā bhakti)*, Śreyānsa gave the supreme gift of pure food to the greatest of all recipients *(pātra)*.

1) He made obeisance to the Lord by circumambulating thrice and then bowed to Him by touching the ground with five parts of his body.

2) He offered to the World Teacher an eminent, high seat.
3) He washed with extreme devotion the Lotus-Feet of the Lord and applied the water that had become sacred after coming in contact with the Lotus-Feet of the Lord to his forehead and other parts of body.
4) He worshipped the Lord with great devotion and with pure and pious eight substances.
5) With utmost humility and purity of heart he bowed and pleaded the Lord to accept his offering.
6) His affectionate devotion to the Lord had made his mind pure.
7) By articulating the glory of the Lord, he made his speech pure.
8) By performing the aforesaid bodily activities, he attained the purity of his body.
9) He pronounced with sincerity the purity of the food.

Ācārya Amṛtacandra's *Puruṣārthasiddhyupāya:*

संग्रहमुच्चस्थानं पादोदकमर्चनं प्रणामं च ।
वाक्कायमनःशुद्धिरेषणशुद्धिश्च विधिमाहुः ॥ १६८ ॥

And the right manner of giving the gift of food (to the ascetic) consists in: respectful welcome, a high seat, washing the feet, worshipping, bowing, purity of the mind, the speech and the body, and purity of the food.

ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वम् ।
अविषादित्वमुदित्वे निरहङ्कारित्वमिति हि दातृगुणाः ॥ १६९ ॥

The (seven) qualities *(guṇa)* required of the donor are: no desire for worldly benefits, forbearance, earnestness, absence of envy, no trace of despondency, no desire of worldly gain, and no pride.

Lord Ādinātha spent almost 1000 years *(chadmasthakāla)* performing karma-destroying austerities.

Lord Ādinātha's Attainment of Omniscience

At the end of the period of asceticism, on the eleventh day of the dark half of the month of Phālguna *(phālguna kṛṣṇa ekādaśī)*, Lord Ādinātha attained the all-embracing knowledge – omniscience *(kevalajñāna)* – that reveals the whole of the universe and the non-universe to its possessor. The World Teacher became truly qualified to expound the reality of substances, souls and non-souls. He became free from the eighteen imperfections which all mundane souls in the three worlds are subjected to.

Ācārya Samantabhadra's *Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra:*

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥६॥

The one who is free from these eighteen imperfections – hunger *(kṣudhā)*, thirst *(tṛṣā)*, old-age *(jarā)*, sickness *(roga)*, rebirth *(janma)*, death *(maraṇa)*, fear *(bhaya)*, pride *(mada)*, attachment *(rāga)*, aversion *(dveṣa)*, delusion *(moha)*, anxiety *(cintā)*, displeasure *(arati)*, sleep *(nidrā)*, astonishment *(vismaya)*, despondency or grief *(viṣāda* or *śoka)*, perspiration *(sveda)*, and regret *(kheda)* – is called the real (trustworthy) sect-founder *(āpta)*.

Further, thirty-four miraculous-happenings *(atiśaya)* appear during the lifetime of the *Arhat;* ten appear naturally at the time of birth, ten on attainment of infinite knowledge *(kevalajñāna)*, and the remaining fourteen are fashioned by the celestial devas.*

* देखें, आचार्य जिनसेन, **हरिवंशपुराण,** सर्ग 3, पृ. 24-25.

Ācārya Kundakunda's *Niyamasāra:*

घणघाइकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुणसहिया ।
चोत्तिसअदिसयजुत्ता अरिहंता एरिसा होंति ॥७१॥

Rid of the four inimical *(ghātī)* karmas, endowed with supreme qualities like omniscience *(kevalajñāna),* and appearance of thirty-four miraculous-happenings *(atiśaya)* – such are the attributes of the *Arhat*.

The ten miraculous-happenings *(atiśaya)* appearing at the time of birth are: 1) no excreta from His body; 2) no perspiration; 3) milk-like white blood; 4) perfect joints noted for extraordinary sturdiness and strength – *vajraṛṣabhanārāca saṃhanana;* 5) perfectly symmetrical body – *samacaturasra saṃsthāna;* 6) stunningly handsome body; 7) extremely fragrant body; 8) one-thousand-and-eight pious marks – including *śrivatsa, śaṅkha, svastika, kamala* and *cakra* – on the body; 9) unparalleled strength; and 10) propitious *(hita)* and cogent *(mita)* speech.

The ten miraculous-happenings *(atiśaya)* which appear on the attainment of omniscience *(kevalajñāna)* are: 1) the Omniscient Lord has calm and large eyes that do not blink; 2) His firmly set hair and nails do not grow; 3) as there remains no need for taking external food, He does not take morsels of food – no *kavalāhāra*; 4) signs of old-age do not appear in Him; 5) due to its unmatched luminance, His body has no shadow; 6) to all – humans, devas and animals – who assemble in the four directions of the majestic Pavilion *(samavasaraṇa)* He appears to be facing them; 7) there is abundance of food in the two-hundred *yojana* expanse of land around Him; 8) no calamities *(upsarga)* can occur in His presence; 9) absence of cruel dispositions, i.e., compassionate tenderness for each other, prevails in all living beings; and 10) as His feet do not touch the ground while moving, He is said to be moving in the sky – *ākāśagamana*.

The fourteen miraculous-happenings *(atiśaya)* fashioned by the devas are: 1) His nectar-like divine discourse *(divyadhvani)* provides ineffable satisfaction to the three kinds of living beings; it is delivered in the language called *arddhamāgadhī* and is heard by all present in their respective tongue; 2) friendly coexistence prevails even among natural adversaries; 3) the trees get laden with fruits and flowers of all the six seasons; 4) the land becomes clear of all dirt, shining like a mirror; 5) the atmosphere is filled with the fragrance of pleasing, mild air; 6) the movement of the Omniscient Lord from one place to the other brings inexpressible joy to the mundane souls; 7) the devas of the Vāyukumāra class clear up the land of thorns, stones, and insects, etc., in the range of one *yojana*; 8) on this clear land, the devas of the Stanitakumāra class, transforming themselves into clouds, rain-down sprinkles of fragrant water; 9) as the Lord moves above the ground – *ākāśagamana* – the devas create rows of divine lotus flowers – 15 rows of 15 flowers each, making a total of 225 lotus flowers – under His feet; 10) the earth appears to be extremely exuberant as lush crop of rice, and other grains, cover it up; 11) the sky becomes absolutely clear, like the untainted omniscience of the Lord; 12) all directions, clear of dust, seem to be paying their homage to the Lord; 13) as per the instruction of the Indra, the subordinate devas proclaim the arrival of the Lord; 14) the divine *dharmacakra* – spinning, super-wheel with sun-like glow – must precede the Lord at all places, to signal His presence.

A heavenly Pavilion *(samavasaraṇa)* was erected for the Lord's Discourse Divine under instruction of Saudharma, the lord of the first heaven. The splendour of the heavenly Pavilion *(samavasaraṇa)* is beyond description but has been summarized thus in the Scripture:

Ācārya Pūjyadāda's *Bhakti Saṃgraha:*

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजल सत्खातिका पुष्पवाटी
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकांतर्ध्वजाद्याः ।
शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवनं स्तूपहर्म्यावली च
प्राकारः स्फाटिकोन्तनृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयम्भूः ॥१॥

(क्षेपक श्लोक - श्री चैत्य भक्ति)

The verse describes very briefly the grandeur of Lord's heavenly Pavilion *(samavasaraṇa)*.
Lord's heavenly Pavilion *(samavasaraṇa)* comprises the huge column called the *mānastambha* (literally, the pride-pillar), the lake *(sarovara)*, the moat *(khāṭikā)* filled with clear water and encircling the entire area, the garden, the enclosing wall, the theater, the second garden, the flags and banners flying high around the grand platform, the enclosures, the divine *(kalpa)* trees, the thick forest exhibiting a mountainous scenic effect, the dome-shaped structures *(stūpa)*, the line of compartments or halls, the walls made of white gems *(sphaṭika)*, the assembly halls for humans *(manuṣya)*, celestial-beings *(deva)* and ascetics *(muni)*. Lord *Tīrthaṅkara* is seated on the throne *(siṃhāsana)*, without touching it.

As the Omniscient *(kevalī),* Lord Ādinātha preached the Truth for the benefit of all *bhavya* – capable of attaining liberation – souls, present and future, for 1 lakh *pūrva* less 1000 years *(kevalakāla)*.
The Lord's Teachings, comprising 12 departments *(dvādaśāṅga),* were truly comprehended and assimilated by exceptionally accomplished Apostles *(gaṇadhara)*, the Chief among them being sage Ṛṣabhasena Svāmī (the younger brother of Bharata). The Apostles propagate the Truth as expounded by the Lord and it gets passed on to the *bhavya* souls through their worthy disciples over the ages.

Although Lord Ādinātha was endowed with ineffable attributes including the final-supreme-body *(carama-śarīra)*, the thirty-four miraculous-happenings *(atiśaya),* the eight divine-splendours *(prātihārya),* the heavenly Pavilion *(samavasaraṇa),* and the omniscience *(kevalajñāna)*, He was totally unattached to any of these. Is it not the most amazing thing on earth?

Ācārya Samantabhadra's *Svayambhūstotra:*

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान् नापि शासनफलैषणातुरः ॥ **(15-3-73)**

> O Lord! Though accompanied by grandeurs like the eight divine-splendours *(aṣṭa prātihārya),* you were unattached to these and even to your own body. You promulgated the path to liberation for the devas and the men. However, you were rid of all anxiety as regards its outcome.

The total time period of Lord's renunciation *(saṁyamakāla)* was 1 lakh *pūrva (chadmasthakāla + kevalakāla).*

Lord Ādinātha attained liberation *(nirvāṇa)* from Mount Kailāśa on the fourteenth day of the dark half of the month of Māgha – *māgha kriṣṇa caturdaśī* – when 3 years and 8½ months were remaining for the start of the fourth period *(duṣamā-suṣamā)* of the present descending *(avasarpiṇī)* half-cycle.

I make obeisance humble to Lord Ādinātha so as to attain release from the weary cycle of births and deaths.

ĀCĀRYA VĀDIRĀJA AND *'EKĪBHĀVA STOTRA'*

Little is known about the life and works of *Ācārya* Vādirāja. The following is translated and excerpted from *Pt.* Pannalal *Sāhityācārya* (2004), *'Paṅcastotrasaṃgraha'*.

Ācārya Vādirāja, the composer of *'Ekībhāva Stotra',* was a great scholar-ascetic of the 11th century (Vikrama Saṃvat). 'Vādirāja' was an honour bestowed on him; this was not his actual name. Being the undisputed master of the debating skills – *vāditva* – in regard to philosophical reasoning, he became famous as 'Vādirāja'. *Ācārya* Vādirāja is considered as one of the great contributors to the Jaina literature.

Vādirāja enjoyed great respect in the court of Caulukya king Jaisiṅha (I). Due to the fruition of the past evil karmas, his body got inflicted with leprosy. In spite of this infliction, the dispassionate saint used to remain engrossed in his meditation, unmindful of his bodily suffering.

Once, an evil-natured courtier, making fun of the accomplished

ascetics, said, "O King! You have great faith in the Jaina dharma and engender reverence for the Jaina ascetics but you are unaware that the bodies of the Jaina ascetics are inflicted with leprosy." Another courtier who had great faith in Jainism could not tolerate this denigrating comment. He responded by saying, "O King! This is not true; in fact, the bodies of the Jaina ascetics are beautiful and lustrous like the tempered gold."

In order to settle the dispute, the king decided to visit the abode of *Ācārya* Vādirāja the next morning. The faithful courtier rushed immediately to the forest where *Ācārya* Vādirāja was stationed and narrated the whole story to him. He requested the *Ācārya* to do whatever he deemed fit; the question here was the glory of the Jaina ascetics. The *Ācārya* blessed him, got engrossed in the devotion of Lord Ādinātha and during the night composed *'Ekībhāva Stotra'*. He implores in *'Ekībhāva Stotra'*: "O Lord! On account of the merit of the worthy souls, you had descended on this earth from the celestial world (the Sarvārthasiddhi heaven) and earlier (six months before you entered your mother's womb) this part of the earth was imparted the lustre of gold (due to the incessant rain of the choicest gems by Kubera). O Lord Jina! Now you have entered the home of my heart that has the door of your meditation and is attractive; is there any wonder in your imparting the lustre of gold to my body?" Also, "O Lord! You had vanquished the pride of Kāmadeva, god of love; the man who looks at you, drinks the nectar of your words, and subsists only on what is dear to you, gets out of the forest of the karmas and attains the abode of ineffable bliss, that is, liberation. How can the disdainful thorns of disease cause him suffering?"

By virtue of his devotion to Lord Jina, the leprosy of *Ācārya* Vādirāja got quelled during the night and by the morning his body became lustrous like gold. In the morning, the king, along with the two courtiers, proceeded to see – to have the *darśana* of – the *Ācārya*. They all reached the forest where the *Ācārya* was stationed. The lustre of his body was spreading far and wide. The king got extremely happy to see the brilliant body of the *Ācārya.* The king asked the faithful courtier,

"Is he your guru?" On getting the reply in affirmative, the king bowed down at the feet of the *Ācārya*. He looked at the evil-natured courtier with anger; the courtier started trembling with fear. At this, the *Ācārya* told the king, "O King! It is true that my body got inflicted with leprosy; even now the little finger of my hand has the effect of the disease. Just to dispel the allegation that the Jaina ascetics suffer from bodily diseases, I have by the power of devotion to Lord Jina quelled, during the night itself, my leprosy. Your courtier is not at fault; fogive him." The king got extremely impressed by the words as well as the sight of the *Ācārya*. He begged for forgiveness, adopted the Jaina dharma and attained the right-belief *(samyagdarśana)*.

A SUBMISSION

It is imperative that due to the lack of my understanding and also to my inadvertence, but certainly not due to my intention and wrong-belief *(mithyātva)*, learned scholars would be able to find in this text errors and omissions in respect of typos, grammar and expression; I shall remain ever apologetic for such imperfections and seek from them forbearance and forgiveness.

Traditionally, the following verse is found at the end of most editions of the great Scripture *Ācārya* Umāsvāmī's *Tattvārthasūtra*:

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम् ।
साधुभिरत्र मम् क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥

('तत्त्वार्थसूत्र' के समापन पर प्रचलित ज्ञप्ति)

> I seek forgiveness from all noble souls for any errors due to missing letters, accents, words, vowels, consonants, compounds, and phonetic requisites in this text. The Scripture is like an ocean; who can swim across it?

It is due to my devotion to the Scripture *(āgama, jinavāṇī)* and my hope that the outcome will help in propagation of the true Doctrine, so

scarce in modern-day literature, that, notwithstanding my meagre knowledge, I have embarked on this project.

ĀCĀRYA VIŚUDDHASĀGARA

Ācārya Viśuddhasāgara's vastness of knowledge of the Holy Scripture can easily be inferred from the eloquence with which he delivers his discourses *(pravacana)* on the most profound and intractable topics of the Jaina Doctrine. he has showered me with his divine blessings during this project. His blessings wondrously made the process and the end-result most gratifying for me.

DR. CHAKRAVARTHI NAINAR DEVAKUMAR

Dr. Chakravarthi Nainar Devakumar has deep interest in the Holy Scripture and his proficiency in the Sanskrit, Tamil and English languages is unquestionable. He has first-hand experience of the miraculous healing effect of *'Ekībhāva Stotra'* (see back cover of the book). He very kindly accepted to review the manuscript and I am grateful for his immaculate proof-reading and most valuable inputs.

I make worshipful obeisance to each of the 8,99,99,997 supreme-ascetics *(bhāvaliṅgī-muni)*, from the sixth *(pramattasaṃyata)* to the fourteenth *(ayogakevalī)* stage-of-spiritual-development *(guṇa-sthāna)*, present in the human-world *(manuṣya-loka)* comprising the two-and-a-half continents, starting from Jambūdvīpa and up to the mountain range of Mānuṣottara in the centre of Puṣkaradvīpa.*

August, 2024
Dehradun, India

– Vijay K. Jain

* * *

* See, *Ācārya* Nemicandra's *Gommaṭasāra Jīvakāṇḍa,* Part-2, p. 869-870.

VIJAY K. JAIN – BIOGRAPHICAL NOTE

Having had his schooling from Mhow and Bhopal in Madhya Pradesh, Vijay K. Jain (b. 1951) did his graduation in Electronics Engineering from Institute of Technology, Banaras Hindu University, and Post-Graduation in Management from Indian Institute of Management, Ahmedabad.

An independent researcher, Vijay K. Jain has authored several books, and edited and translated into English a number of profound Jaina texts.

1. *Marketing Management for Small Units* (1988).
2. **जैन धर्म : मंगल परिचय** (1994).
3. *From IIM-Ahmedabad to Happiness* (2006).
4. *Āchārya Umāsvāmi's* ***Tattvārthsūtra*** *– With Hindi and English Translation* (2011).
5. *Āchārya Kundkund's* ***Samayasāra*** *– With Hindi and English Translation* (2012).
6. *Shri Amritachandra Suri's* ***Puruṣārthasiddhyupāya*** *– With Hindi and English Translation* (2012).
7. *Ācārya Nemichandra's* ***Dravyasaṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes* (2013).
8. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Iṣṭopadeśa*** *– The Golden Discourse* (2014).
9. *Ācārya Samantabhadra's* ***Svayambhūstotra*** *– Adoration of the Twenty-four Tīrthaṅkara* (2015).
10. *Ācārya Samantabhadra's* ***Āptamīmāṃsā (Devāgamastotra)*** *– Deep Reflection On The Omniscient Lord* (2016).
11. *Ācārya Samantabhadra's* ***Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra*** *– The Jewel-casket of Householder's Conduct* (2016).
12. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Samādhitaṅtram –*** *Supreme Meditation* (2017).
13. *Ācārya Kundakunda's* ***Pravacanasāra –*** *Essence of the Doctrine* (2018).
14. *Ācārya Umāsvāmī's* ***Tattvārthasūtra*** *– With Explanation in English from Ācārya Pūjyapāda's* ***Sarvārthasiddhi*** (2018).
15. *Ācārya Kundakunda's* ***Niyamasāra*** *– The Essence of Soul-adoration (With Authentic Explanatory Notes)* (2019).

16. *Ācārya Guṇabhadra's* ***Ātmānuśāsana*** *– Precept on the Soul* (2019).
17. *Ācārya Kundakunda's* ***Pañcāstikāya-saṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes in English* (2020).
18. आचार्य समन्तभद्र विरचित **युक्त्यनुशासन** - अन्वयार्थ एवं व्याख्या सहित (2020).
19. आचार्य समन्तभद्र विरचित **स्तुतिविद्या (जिनशतक, जिनस्तुतिशतं)** (2020).
20. English translation of: दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर विरचित **सत्यार्थ-बोध;** *Ācārya Viśuddhasāgara's* ***Satyārtha-bodha*** *– Know The Truth* (2021).
21. *Ācārya Māṇikyanandi's* ***Parīkṣāmukha Sūtra*** *– Essence of the Jaina Nyāya* (2021).
22. *Ācārya Kundakunda's* ***Bārasa Aṇuvekkhā*** *– The Twelve Contemplations (With Authentic Explanatory Notes)* (2021).
23. *Ācārya Pūjyapāda's* ***Bhakti Saṃgraha*** *– Collection of Devotions* (2022).
24. *Ācārya Kundakunda's* ***Samayasāra*** *– With Hindi and English Translation* (2022), Second Edition.
25. *Ācārya Nemichandra's* ***Dravyasaṃgraha*** *– With Authentic Explanatory Notes* (2022), Second Edition.
26. *Ācārya Mānatuṅga's* ***Bhaktāmara Stotra*** *– With Hindi and English Ren*dering (2023).
27. *Ācārya Kundakunda's* ***Rayaṇasāra*** *– The Quintessential Jewel* (2023).
28. *Ācārya Kumudacandra's* ***Kalyāṇamandira Stotra*** *– Adoration of Lord Pārśvanātha* (2024).
29. *Ācārya Devasena's* ***Ālāpa Paddhati*** *– The Ways of Verbal Expression* (2024).
30. *Ācārya Vādirāja's* ***Ekībhāva Stotra*** *(Anecdotal story – quelling leprosy)* (2024).

Mr. Jain is the proprietor of Vikalp Printers, a small, high-end printing and publishing firm, based in Dehradun, India.

* * *

"वागीश्वरि प्रतिदिनं मम रक्ष देवि ॥"

CONTENTS

मंगल आशीर्वाद - श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनि	-----	(V)
PREFACE – VIJAY K. JAIN	-----	(VII)
VIJAY K. JAIN – BIOGRAPHICAL NOTE	-----	(XXV)

Verse No.	*Head of the Verse*		*Page*
1.	**एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो**	---	**3**
2.	**ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं**	---	**5**
3.	**आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्**	---	**7**
4.	**प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्या-**	---	**9**
5.	**लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु-**	---	**11**
6.	**जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा**	---	**13**
7.	**पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं**	---	**15**
8.	**पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं**	---	**17**
9.	**पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्ति-**	---	**19**
10.	**ह्रद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही**	---	**21**
11.	**जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं**	---	**23**
12.	**प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः**	---	**25**
13.	**शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा**	---	**29**
14.	**प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्ता-**	---	**32**
15.	**आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः**	---	**34**

Verse No.	*Head of the Verse*		*Page*
16.	**प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धे-**	---	**37**
17.	**प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख! त्वामनुध्यायतो मे**	---	**40**
18.	**मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गीतरङ्गैः-**	---	**43**
19.	**आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः**	---	**47**
20.	**इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते**	---	**50**
21.	**वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येनतुल्यः**	---	**53**
22.	**कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो**	---	**56**
23.	**देव! स्तोतुं त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्ति**	---	**58**
24.	**चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं**	---	**61**
25.	**भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद त्वत्कीर्तने न क्षमाः**	---	**65**
26.	**'प्रशस्ति' - वादिराजमनु शाब्दिकलोको**	---	**69**

APPENDICES

1.	REFERENCES AND GRATEFUL ACKNOWLEDGMENT **संदर्भ सूची एवं कृतज्ञता ज्ञापन**	**---**	**71**
2.	GUIDE TO TRANSLITERATION	**---**	**73**

* * *

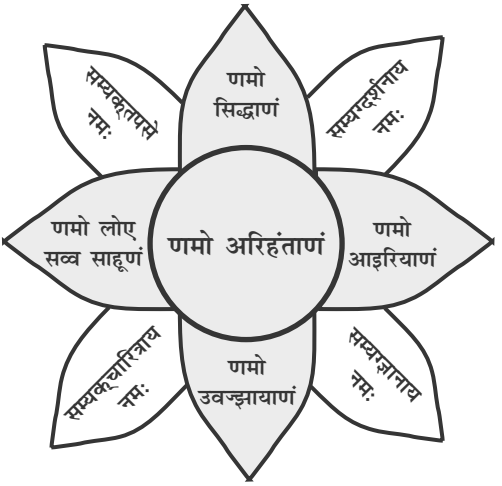

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ॥

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ॥

***Ācārya* Vādirāja's**

Ekībhāva Stotra

(Anecdotal story – quelling leprosy)

आचार्य वादिराज विरचित

एकीभाव स्तोत्र

(माहात्म्य कथा - कुष्ठ-रोग निवारण)

Ācārya Samantabhadra's *Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra:*

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् ।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥ ११९ ॥

सामान्यार्थ – श्रावक को आदर से युक्त होकर प्रतिदिन मनोरथों को पूर्ण करने वाले और काम को भस्म करने वाले अरिहन्त देव के चरणों में समस्त दुःखों को दूर करने वाली पूजा करना चाहिए।

In order to get rid of all kinds of distress, a householder should, with great reverence, worship daily the Holy Feet – wish-fulfilling and destroyers of lustful cravings – of the *Tīrthaṅkara*.

ॐ

Ācārya Vādirāja's
Ekībhāva Stotra

(Anecdotal story – quelling leprosy)

आचार्य वादिराज विरचित
एकीभाव स्तोत्र

(माहात्म्य कथा - कुष्ठ-रोग निवारण)

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति ।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे! भक्तिरुन्मुक्तये चे-
ज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥१॥

ekībhāvaṃ gata iva mayā yaḥ svayaṃ karmabandho
ghoraṃ duḥkhaṃ bhavabhavagato durnivāraḥ karoti |
tasyāpyasya tvayi jinarave! bhaktirunmuktaye ce-
jjetuṃ śakyo bhavati na tayā ko(a)parastāpahetuḥ ||1||

अन्वयार्थ - [**स्वयं**] अपने आप [**मया 'सह'**] मेरे साथ [**एकीभावं गत इव**] एकीभाव अर्थात् तन्मयता को प्राप्त हुए के समान, [**भवभवगतः**] भव-भव में साथ चलने वाला और [**दुर्निवारः**] बड़ी कठिनाई से दूर करने योग्य [**यः**] जो [**कर्मबन्धः**] कर्मों का बन्धन [**घोरम् दुःखम्**] भयंकर

PREVIEW ONLY

दु:ख को **[करोति]** करता है; **[जिनरवे!]** हे जिनसूर्य! **[त्वयि भक्तिः]** आपके विषय में की हुई भक्ति **[चेत्]** यदि **[तस्य अपि अस्य उन्मुक्तये]** उस (कर्म-बन्धन के भयंकर दु:ख) को भी दूर करने के लिए (समर्थ) है, (तर्हि) तो फिर **[तया]** उस (भक्ति) के द्वारा **[अपरः कः ताप हेतुः]** दूसरा कौन सा सन्ताप का कारण **[जेतुम् शक्यः न भवति]** जीता नहीं जा सकता है? अर्थात् अवश्य जीता जा सकता है।

भावार्थ - मेरी आत्मा के साथ कर्मों का बन्धन अनादि से एकीभाव अर्थात् तन्मयता को प्राप्त हो रहा है। उसी के कारण मैं प्रत्येक भव में नवीन-नवीन शरीर को पाकर इस संसार में भ्रमण कर रहा हूँ। भव-भव में प्राप्त प्रत्येक शरीर मेरी आत्मा के साथ, उससे सर्वथा भिन्न होते हुए भी, पानी में दूध की तरह एकीभाव से रहता है। इस प्रकार यह मेरा कर्मों का बन्धन ही है जो मुझे संसार के भयंकर दु:खों को प्राप्त करा रहा है। इस कर्मों के बन्धन को दूर करना अत्यन्त कठिन है। हे जिनेन्द्र भगवन्! आपके विषय में की हुई भक्ति यदि कर्म-बन्धन के भयंकर दु:ख को भी दूर करने के लिए समर्थ है, तो फिर उस भक्ति के द्वारा दूसरा कौन सा सांसारिक सन्ताप है जो दूर नहीं किया जा सकता है? अर्थात् अवश्य ही किया जा सकता है।

Since beginningless sequence of births in this world, the karmas have remained inextricably bound with my soul; this bondage of the karmas with the soul is extremely difficult to be disjointed and is the cause of grave misery of worldly existence. O Jina-Sun! When your devotion is capable of ridding the soul of even the grave misery caused by the bondage of the karmas, is there any other worldly calamity that cannot be overcome through your devotion?

PREVIEW ONLY

Explanatory Note

From the beginningless time of my worldly existence, my soul *(ātmā)* keeps on adopting the body, one after another, due to it being perennially and inextricably bound with the karmas. In my worldly existence, the process of adopting a new body with each birth goes on sequentially and incessantly. In each case, though the possessor-of-the-body (the soul) and the body live together inseparably like the milk and the water, still both are entirely distinct substances having their respective own-nature *(svabhāva)*. I am being subjected to grave misery due to my worldly existence. This bondage of the karmas is extremely difficult to be snapped. O Lord Jina! When your devotion has the power to end the grave misery of worldly existence due to the bondage of the karmas, which other worldly calamity cannot be overcome by your devotion?

ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः ।
चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥२॥

jyotīrūpaṃ duritanivahadhvāṅtavidhvaṅsahetuṃ
tvāmevāhurjinavara ciraṃ tattvavidyābhiyuktāḥ |
cetovāse bhavasi ca mama sphāramudbhāsamāna-
stasminnaṅhaḥ kathamiva tamo vastuto vastumīṣṭe ||2||

अन्वयार्थ - **[जिनवर]** हे जिनेन्द्र! **[तत्त्वविद्याभियुक्ताः]** तत्त्व विद्या के जानने वाले ऋषिगण **[चिरम्]** चिरकाल से **[त्वाम् एव]** आपको ही **[ज्योतीरूपम्]** 'ज्ञान-ज्योति स्वरूप' **[दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं]** पाप-समूह रूपी अन्धकार के विनाश का कारण **[आहुः]** कहते हैं, **[च]** और आप **[मम]** मेरे **[चेतोवासे]** मन-रूपी मन्दिर में **[स्फारम्]** अत्यन्त **[उद्भासमानः]** प्रकाशमान **[भवसि]** हो रहे हो; फिर **[तस्मिन्]** उस मन्दिर में **[वस्तुतः]** निश्चित ही **[अंहः तमः]** पाप-रूपी अन्धकार **[वस्तुम्]** निवास करने के लिए **[कथम् इव]** किस प्रकार **[ईष्टे]** समर्थ हो सकता है?

भावार्थ - हे भगवन्! तत्त्व-ज्ञान से युक्त, ऋद्धिधारी गणधरादि महान् ऋषियों ने सदाकाल से आपको 'केवलज्ञान रूपी परम ज्योति' का धारक कहा है। सर्व घातिया कर्मों के अत्यन्त क्षय से यह ज्ञान-ज्योति आप में प्रकट हुई है। इस परम ज्योति के सम्मुख पाप-समूह रूपी अन्धकार भला कैसे टिक सकता है? हे जिनेन्द्र भगवन्! मैंने अपने मन-मन्दिर में आपको विराजमान कर लिया है जहाँ आप अत्यन्त प्रकाशमान हो रहे हो। ऐसे मेरे मन-मन्दिर में पाप-रूपी अन्धकार स्वयमेव विनाश को प्राप्त हो गया है।

O Lord Jina! From time immemorial, the accomplished ascetics, adept in the knowledge of the Reality, call only you as the 'Supreme Effulgence of Knowledge' that is the destroyer of the darkness of the slew of vices. And, you are shining brightly in the temple of my heart. Is it then possible for the darkness of vices to find a place in such a temple of my heart?

EXPLANATORY NOTE

O Lord Jina! Accomplished ascetics like the Apostles

PREVIEW ONLY

(gaṇadhara), adept in the knowledge of the objects of the Reality, have from time immemorial called only you as the 'Supreme Effulgence of Knowledge' *(parama jyoti)* or the possessor of omniscience *(kevalajñāna)* – the infinite and all-embracing knowledge. How can the darkness of the slew of vices survive in presence of such effulgence? O Lord! I have established you in the temple of my heart where you are shining brightly. In such a temple of my heart, the darkness of vices, on its own, must cease to exist.

आनन्दाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमंत्रैर्भवन्तम् ।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्या-
न्निष्कास्यन्ते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ॥३॥

ānandāśrusnapitavadanaṃ gadgadaṃ cābhijalpan
yaścāyeta tvayi dṛḍhamanāḥ stotramaṅtrairbhavantam |
tasyābhyastādapi ca suciraṃ dehavalmīkamadhyā-
nniṣkāsyante vividhaviṣamavyādhayaḥ kādraveyāḥ ||3||

अन्वयार्थ – हे भगवन्! **[यः]** जो **[त्वयि]** आप में **[दृढमनाः]** एकाग्रचित्त होकर **[आनन्द अश्रु स्नपित वदनं]** आनन्द के अश्रुओं से (अपने) मुख को प्रक्षालित (गीला) करता हुआ **[च]** और **[गद्गदम्]** गद्गद (हर्षित) शब्दों से **[अभिजल्पन्]** (आपका) गुणानुवाद करता है **[च]** और **[स्तोत्रमंत्रैः]** स्तोत्र-रूपी मन्त्रों के द्वारा **[भवन्तम् अयेत]** आपकी पूजा करता है, **[तस्य]** उसके **[सुचिरम्]** चिरकाल से (स्थित) **[च अभ्यस्तात् अपि]** और निरन्तर

परिचित भी **[देह वल्मीक मध्यात्]** शरीर रूपी बाँबी में स्थित **[विविध विषम व्याधयः]** अनेक प्रकार की भयंकर व्याधियों **[काद्रवेयाः]** (रूपी) साँप **[निष्कास्यन्ते]** बाहर निकल जाते हैं अर्थात् दूर हो जाते हैं।

भावार्थ – शरीर को अनेक प्रकार की व्याधियों का घर कहा जाता है। आचार्य वादिराज इस पद्य में कहते हैं कि हे भगवन्! जो मनुष्य आप में एकाग्रचित्त तथा भावविभोर होकर आनन्द के अश्रुओं से अपने मुख को प्रक्षालित (गीला) करता हुआ, गद्गद (हर्षित) शब्दों से आपका गुणानुवाद करता है और स्तोत्र-रूपी मन्त्रों के द्वारा आपकी पूजा करता है, उसके शरीर रूपी बाँबी में स्थित सर्पों के समान चिरकालीन और निरन्तर कष्ट देने वाली भयंकर व्याधियाँ बाहर निकल जाती हैं अर्थात् दूर हो जाती हैं।

O Lord! The man who, with due concentration, moistening his face with tears of joy flowing out of your devotion, utters words of your praise and worships you with incantation of sacred hymns, causes the age-old and intractable diseases that had been living in his body, like the snakes live in snake-holes, to come out; that is, his body is freed from all diseases.

Explanatory Note

The body is called the home to many kinds of diseases. In this verse, *Ācārya* Vādirāja proclaims: O Lord! The man who, with due concentration, moistening his face with tears of joy flowing out of your devotion, utters words of your praise and worships you with incantation of sacred hymns, causes the age-old and intractable diseases that had been living in his body, like the

PREVIEW ONLY

snakes live in snake-holes, to come out; that is, his body is freed from all diseases.

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्या-
त्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदं ।
ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्ट-
स्तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥४॥

prāgeveha tridivabhavanādeṣyatā bhavyapuṇyā-
tpṛthvīcakraṃ kanakamayatāṃ deva ninye tvayedaṃ |
dhyānadvāraṃ mama rucikaraṃ svāntagehaṃ praviṣṭa-
statkiṃ citraṃ jina! vapuridaṃ yatsuvarṇīkaroṣi ||4||

अन्वयार्थ - **[देव]** हे भगवन्! **[भव्यपुण्यात्]** भव्य जीवों के पुण्य के कारण **[त्रिदिवभवनात्]** स्वर्गलोक से (सर्वार्थसिद्धि विमान से) **[इह]** यहाँ (इस पृथ्वी पर) **[एष्यता]** आने वाले **[त्वया]** आपके द्वारा **[प्राग् एव]** (माता के गर्भ में आने के छह माह) पूर्व से ही जब **[इदम् पृथ्वीचक्रं]** यह भूमण्डल **[कनकमयतां]** (कुबेर द्वारा रत्नों की वर्षा से) सुवर्णरूपता को **[निन्ये]** प्राप्त कराया गया था; तब फिर **[जिन!]** हे जिनेन्द्र! **[ध्यानद्वारम्]** ध्यान-रूपी द्वार से युक्त और **[रुचिकरम्]** मनोहर **[मम]** मेरे **[स्वान्तगेहम्]** मन-रूपी गृह में **[प्रविष्टः]** प्रविष्ट हुए आप **[यत्]** जो **[इदम् वपुः]** इस शरीर को **[सुवर्णीकरोषि]** सुवर्णमय कर रहे हो **[तत् किम् चित्रम्]** उसमें क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

भावार्थ - भगवान् ऋषभदेव का जीव सवार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र पद से

PREVIEW ONLY

चय कर माता मरुदेवी के गर्भ में आया था। माता के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से ही कुबेर ने अयोध्या नगरी में रत्नों की वर्षा प्रारम्भ कर दी थी जिससे वहाँ की सम्पूर्ण भूमि सुवर्णमयी हो गई थी। इसीलिए आचार्य वादिराज कहते हैं कि हे भगवन्! भव्य जीवों के पुण्य के कारण स्वर्गलोक से इस पृथ्वी पर माता के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से ही जब यह भूमण्डल सुवर्णरूपता को प्राप्त कराया गया था, तब फिर ध्यान-रूपी द्वार से युक्त और मनोहर मेरे मन-रूपी गृह में प्रविष्ट हुए आप अब जो इस शरीर को सुवर्णमय कर रहे हो, उसमें क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

('एकीभाव स्तोत्र' की रचना प्रारम्भ करते समय आचार्य वादिराज का शरीर कोढ़ (कुष्ठ) रोग से ग्रस्त था और इस स्तोत्र के प्रभाव से उनका वह रोग नष्ट हो गया था।)

O Lord! On account of the merit of the worthy souls, you had descended on this earth from the celestial world (the Sarvārthasiddhi heaven) and earlier (six months before you entered your mother's womb) this part of the earth was imparted the lustre of gold (due to the incessant rain of the choicest gems by Kubera). O Lord Jina! Now you have entered the home of my heart that has the door of your meditation and is attractive; is there any wonder in your imparting the lustre of gold to my body? No wonder at all.

EXPLANATORY NOTE

The soul *(jīva)* of Lord Ṛṣabhadeva which was in the mode *(paryāya)* of Ahamindra in the Sarvārthasiddhi celestial car had

PREVIEW ONLY

descended from there to enter the womb of mother Marudevī. In this verse *Ācārya* Vādirāja says: On account of the merit of the worthy souls, you had descended on this earth from the celestial world (the Sarvarthasiddhi heaven) and six months before you entered your mother's womb this part of the earth was imparted the lustre of gold due to the incessant rain of the choicest gems by Kubera. O Lord Jina! Now you have entered the home of my heart that has the door of your meditation and is attractive; is there any wonder in your imparting the lustre of gold to my body? No wonder at all.

(At the start of the composition of *'Ekībhāva Stotra'*, *Ācārya* Vādirāja was suffering from leprosy causing severe skin lesions in his body. As he proceeded with the composition, his defaced body was rid of leprosy and attained the lustre of gold.)

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु-
स्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका ।
भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥५॥

lokasyaikastvamasi bhagvannirnimittena bandhu-
stvayyevāsau sakalaviṣayā śaktirapratyanīkā |
bhaktisphītāṃ ciramadhivasanmāmikāṃ cittaśayyāṃ
mayyutpannaṃ kathamiva tataḥ kleśayūthaṃ sahethāḥ ||5||

अन्वयार्थ - **[भगवन्]** हे भगवन्! **[त्वम्]** आप **[लोकस्य]** लोक के **[एकः]** अद्वितीय, **[निः निमित्तेन बन्धुः असि]** बिना किसी प्रयोजन के बन्धु (हित करने वाले ऐसे बन्धु जो नाम-कर्म तथा गोत्र-कर्म के कारण प्रकट

नहीं हुए हैं) हो और **[असौ]** यह (ऐसी) **[सकलविषया]** सर्व पदार्थों को विषय करने वाली, **[अप्रत्यनीका]** बाधक कारणों से रहित **[शक्तिः]** शक्ति **[त्वयि एव]** आप में ही है; **[ततः]** फिर **[चिरम्]** चिरकाल से **[भक्तिस्फीताम्]** भक्ति से विस्तृत **[मामिकाम् चित्तशय्याम् अधिवसन्]** मेरी मन रूपी शय्या पर निवास करने वाले आप **[मयि उत्पन्नम्]** मुझ में उत्पन्न हुए **[क्लेशयूथम्]** दुःखों के समूह को **[कथम् इव]** किस प्रकार **[सहेथाः]** सहन करोगे?

भावार्थ – आचार्य वादिराज भगवान् को जगत् के निष्कारण बन्धु, सर्वज्ञता और निर्विरोध शक्ति का पुञ्ज कहते हैं और इसलिए जो व्यक्ति भगवान् को अपने मन-मन्दिर में भक्तिपूर्वक स्थापित करता है उसके सर्व दुःख विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। वे कहते हैं कि हे भगवन्! आप लोक के अद्वितीय, बिना किसी प्रयोजन के बन्धु अर्थात् हित करने वाले हो और आप में ही सर्व पदार्थों को विषय करने वाली, बाधक कारणों से रहित शक्ति विद्यमान है। आप चिरकाल की भक्ति से विस्तृत मेरी मन रूपी शय्या पर निवास करने वाले हो, ऐसे में आप मुझ में उत्पन्न हुए दुःखों के समूह को किस प्रकार सहन कर सकते हो? अर्थात् मेरे दुःखों के समूह का विनाश होना निश्चित है।

O Lord! In this world, you are the unparalleled and selfless brother [not because of worldly relationship that is due to the fruition of the name *(nāma)* and stutus-determining *(gotra)* karma]; only you possess the power that knows all objects, and that power is without impediments. I have, since long, established you in the couch of my heart filled with your devotion. This be the case, how can you live with the slew of miseries that have arisen in my being?

PREVIEW ONLY

Explanatory Note

Ācārya Vādirāja calls Lord Jina a selfless benefactor of the world, endowed with the unhindered power of omniscience. In this verse, he says: O Lord! In this world, you are the unparalleled and selfless benefactor; only you possess the power that knows all objects, and that power is without impediments. I have, since long, established you in the couch of my heart that is filled with your devotion. This be the case, how can you live with the slew of miseries that have arisen in my being?

जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी ।
तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥६॥

janmāṭavyāṃ kathamapi mayā deva dīrghaṃ bhramitvā
prāptaiveyaṃ tava nayakathā sphārapīyūṣavāpī |
tasyā madhye himakarahimavyūhaśīte nitāntaṃ
nirmagnaṃ māṃ na jahati kathaṃ duḥkhadāvopatāpāḥ ||6||

अन्वयार्थ - **[देव]** हे भगवन्! **[जन्माटव्याम्]** संसार-रूपी अटवी (वन) में **[दीर्घम्]** बहुत समय तक **[भ्रमित्वा]** भ्रमण करने के पश्चात् **[मया]** मेरे द्वारा **[तव]** आपकी **[इयम्]** यह **[नयकथा]** नय (और प्रमाण) कथा-रूपी **[स्फार पीयूष वापी]** विस्तृत अमृत की बावड़ी **[कथम् अपि]** किसी तरह (बड़े कष्ट से) **[प्राप्ता एव]** प्राप्त कर ही ली गई है। अब **[हिमकर हिमव्यूह शीते]** चन्द्रमा और बर्फ के समूह के समान शीतल **[तस्याः मध्ये]**

PREVIEW ONLY

उस (बावड़ी) के मध्य में **[नितान्तम्]** अतिशय रूप से **[निर्मग्नम्]** डूबे हुए **[माम्]** मुझको **[दुःखदावोपतापाः]** दुःख-रूपी दावानल का ताप **[कथम् न जहति]** क्या नहीं छोड़ रहा है? वह ताप मुझे अवश्य ही छोड़ रहा है।

भावार्थ - आचार्य वादिराज जिन भगवान् की स्याद्वाद तथा नय-प्रमाण से सुसंस्कृत वाणी की प्राप्ति की दुर्लभता और उसकी संसार-भ्रमण से मुक्ति की समर्थता को इस पद्य में वर्णित कर रहे हैं। वे कहते हैं कि हे भगवन्! संसार-रूपी अटवी (वन) में बहुत समय तक भ्रमण करने के पश्चात् मेरे द्वारा बड़े कष्ट से किसी तरह आपकी यह नय-प्रमाण कथा-रूपी विस्तृत अमृत की बावड़ी प्राप्त कर ली गई है। अब चन्द्रमा और बर्फ के समूह के समान शीतल उस बावड़ी के मध्य में अतिशय रूप से निर्मग्न मुझको दुःख-रूपी दावानल का ताप क्या नहीं छोड़ रहा है? वह ताप मुझे अवश्य ही छोड़ रहा है।

O Lord! After roaming for a long time in the wilderness of worldly existence, I have now somehow accessed this vast pond of nectar comprising your discourses on the standpoints *(naya)* [and valid-knowledge *(pramāṇa)*]. This pond (of nectar) is soothing like the moon and the chunk of ice, and as I am wholly immersed in it, is the heat of the conflagration in form of miseries not leaving me? The heat is certainly leaving me.

EXPLANATORY NOTE

Ācārya Vādirāja explains here that it is extremely difficult to get access to the Lord's golden words that expound the doctrine of conditional predication – *syādvāda* – together with the concepts of standpoints *(naya)* and valid-knowledge *(pramāṇa)*; these

golden words have the power to liberate man from the vagaries of wordly-existence. He avers: O Lord! After roaming for a long time in the wilderness of worldly existence, I have now somehow accessed this vast pond of nectar comprising your discourses on the standpoints *(naya)* and valid-knowledge *(pramāṇa)*. This pond of nectar is soothing like the moon and the chunk of ice, and as I am wholly immersed in it, the heat of the conflagration in form of worldly miseries is certain to leave me.

पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः ।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥७॥

pādanyāsādapi ca punato yātrayā te trilokīṃ
hemābhāso bhavati surabhiḥ śrīnivāsaśca padmaḥ |
sarvāṅgeṇa spṛaśati bhagavaṅstvayyaśeṣaṃ mano me
śreyaḥ kiṃ tatsvayamaharaharyanna māmabhyupaiti ||7||

अन्वयार्थ – **[भगवन्]** हे भगवन्! **[यात्रया]** विहार के द्वारा **[त्रिलोकीम्]** तीनों लोकों को **[पुनतः]** पवित्र करने वाले **[ते]** आपके **[पादन्यासात् अपि च]** चरण-निक्षेप (चरणों के सामीप्य) मात्र से ही **[पद्मः]** कमल **[हेमाभासः]** सुवर्ण जैसा कान्तिमान्, **[सुरभिः च]** सुगन्धित और **[श्रीनिवासः]** लक्ष्मी (शोभा) का निवास **[भवति]** हो जाता है; **[मे]** मेरे **[अशेषम् मनः]** सम्पूर्ण मन (द्वारा) **[त्वयि]** आपको **[सर्वाङ्गेण]** सब अङ्गों से **[स्पृशति]** स्पर्श करने पर **[तत् किम् श्रेयः]** वह कौन सा कल्याण है

PREVIEW ONLY

[यत्] जो **[अहरहः]** प्रत्येक दिन **[स्वयम्]** अपने आप **[माम् न अभ्युपैति]** मेरे सम्मुख न आता हो?

भावार्थ - जिनेन्द्र भगवान् के विहार (आकाशगमन) के समय उनके चरणकमलों के सम्मुख इन्द्र की आज्ञा से अन्य देवगण सुवर्णमय कमलों की पंक्तियों की रचना करते हैं। प्रत्येक पंक्ति में पन्द्रह कमल होते हैं और पन्द्रह पंक्तियाँ होती हैं, इस प्रकार कुल 225 कमल होते हैं। आचार्य वादिराज का कहना है कि जिनेन्द्र भगवान् के चरणकमलों का सामीप्य प्राप्त हो जाने से ही कमल अप्रतिम विशेषणों से युक्त हो जाता है। आचार्य कहते हैं कि हे भगवन्! विहार के द्वारा तीनों लोकों को पवित्र करने वाले आपके चरण-निक्षेप (चरणों के सामीप्य) मात्र से ही कमल सुवर्ण जैसा कान्तिमान्, सुगन्धित और लक्ष्मी (शोभा) का निवास हो जाता है। मेरे सम्पूर्ण मन द्वारा आपको सब अङ्गों से स्पर्श करने पर वह कौन सा कल्याण है जो प्रत्येक दिन अपने आप मेरे सम्मुख न आता हो? अर्थ यह है कि भगवान् का ध्यान करने से सब कल्याण स्वयमेव प्राप्त होते हैं।

O Lord! Due to mere proximity to your Feet, that make the three worlds pious, the lotus attains the lustre like that of gold, gets fragrance, and becomes the abode of Lakṣmī. As my entire heart touches every part of your body, what propitiousness can afford not to approach me each day?

EXPLANATORY NOTE

As the Lord moves above the ground – *ākāśagamana* – the devas create rows of divine lotus-flowers – 15 rows of 15 flowers each, making a total of 225 lotus-flowers – below his Feet. *Ācārya*

PREVIEW ONLY

Vādirāja promulgates that the lotus-flower attains divine attributes due to its proximity to the Lord's Lotus-Feet. The *Ācārya* says: O Lord! Due to mere proximity to your Feet, that make the three worlds pious, the lotus attains the lustre like that of gold, gets fragrance, and becomes the abode of Lakṣmī. As my entire heart touches every part of your body, what propitiousness can afford not to approach me each day? The idea is that by meditating on the Lord, all kinds of propitiousness are gotten automatically.

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्दधाम प्रविष्टम् ।
त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं
क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका निर्लुठन्ति ॥८॥

paśyantaṃ tvadvacanamamṛtaṃ bhaktipātryā pibantaṃ
karmāraṇyātpuruṣamasamānandadhāma praviṣṭam |
tvāṃ durvārasmaramadaharaṃ tvatprasādaikabhūmiṃ
krūrākārāḥ kathamiva rujākaṇṭakā nirluṭhanti ||8||

अन्वयार्थ – हे भगवन्! **[दुर्वार स्मर मद हरम्]** दुर्जय कामदेव के मद का हरण करने वाले **[त्वाम्]** आपको **[पश्यन्तम्]** देखने वाले, **[भक्तिपात्र्या]** भक्ति-रूपी पात्र से **[त्वद्वचनममृतम्]** आपके वचन-रूपी अमृत को **[पिबन्तम्]** पीने वाले तथा **[त्वत्प्रसादैकभूमिम्]** आपकी प्रसन्नता ही जिसका एकमात्र आधार हो **[पुरुषम्]** (ऐसा) पुरुष **[कर्मारण्यात्]** कर्म-रूपी वन से **[असम आनन्दधाम]** अनुपम आनन्दधाम (अर्थात् मोक्ष)

[प्रविष्टम्] को प्राप्त होता है, तथा उसे **[क्रूराकाराः]** भयंकर आकृति वाले **[रुजा कण्टका]** रोग-रूपी काँटे **[कथम् इव]** किस प्रकार **[निर्लुठन्ति]** पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते।

भावार्थ - जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन करने से, भक्तिपूर्वक उनका उपदेश सुनने से तथा उनमें असीम श्रद्धा रखने वाले पुरुष के रोग-रूपी काँटे तो दूर होते ही हैं, वह अन्ततः मोक्ष को प्राप्त होता है। आचार्य वादिराज कहते हैं कि हे भगवन्! दुर्जय कामदेव के मद का हरण करने वाले आपको देखने वाले, भक्ति-रूपी पात्र से आपके वचन-रूपी अमृत को पीने वाले तथा आपकी प्रसन्नता अर्थात् श्रद्धा ही जिसका एकमात्र आधार हो, ऐसा पुरुष कर्म-रूपी वन से निकलकर अनुपम आनन्दधाम अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है। ऐसे भव्य पुरुष को भयंकर आकृति वाले रोग-रूपी काँटे किस प्रकार पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते।

O Lord! You had vanquished the pride of Kāmadeva, god of love; the man who looks at you, drinks the nectar of your words, and subsists only on what is dear to you, gets out of the forest of the karmas and attains the abode of ineffable bliss, that is, liberation. How can the disdainful thorns of disease cause him suffering? That is not possible.

EXPLANATORY NOTE

By looking at the idol of Lord Jinendra, by listening to his discourse and by having an unwavering faith in him, not only are the thorns of disease removed but one ultimately attains the state of liberation. *Ācārya* Vādirāja says: O Lord! You had

PREVIEW ONLY

vanquished the pride of Kāmadeva, the god of love; the man who looks at you, drinks the nectar of your words and subsists only on what is dear to you, gets out of the forest of the karmas and attains the ineffable bliss of liberation. How can the disdainful thorns of disease cause him suffering? That is not possible.

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः ।
दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥९॥

pāṣāṇātmā taditarasamaḥ kevalaṃ ratnamūrti-
rmānastambho bhavati ca parastādṛśo ratnavargaḥ |
dṛṣṭiprāpto harati sa kathaṃ mānarogaṃ narāṇāṃ
pratyāsattiryadi na bhavatastasya tacchaktihetuḥ ||9||

अन्वयार्थ – (भगवान् के समवसरण में स्थित) **[पाषाणात्मा]** पाषाण का बना हुआ **[मानस्तम्भः]** मानस्तम्भ **[तत् इतर समः]** अन्य पाषाण के समान है, **[केवलम्]** केवल **[रत्नमूर्तिः]** रत्नमयी **[भवति]** होता है परन्तु **[परः च रत्नवर्गः]** अन्य रत्नों का समूह भी **[तादृशः 'भवति']** उसकी तरह रत्नमयी होता है। हे नाथ! **[स]** वह (मानस्तम्भ) **[दृष्टिप्राप्तः]** दृष्टिगोचर होते ही **[नराणाम्]** मनुष्यों के **[मानरोगं]** मान (अहंकार) रूपी रोग को **[कथम् हरति]** कैसे हर सकता **[यदि]** यदि **[तस्य]** उसकी **[तत् शक्ति हेतुः]** उस शक्ति की कारणभूत **[भवतः]** आप (भगवान्) की **[प्रत्यासत्तिः न]** समीपता न होती?

PREVIEW ONLY

भावार्थ – भगवान् के समवसरण में चारों दिशाओं में एक-एक रत्नमयी और अत्यन्त ऊँचा मानस्तम्भ होता है। उस मानस्तम्भ के दर्शन-मात्र से उसको देखने वाले का अहंकार नष्ट हो जाता है। वह मानस्तम्भ भी अन्य स्तम्भों की तरह पाषाण आदि का ही बना हुआ होता है, फिर उसमें अहंकार को नष्ट करने की शक्ति कहाँ से आती है? आचार्य वादिराज यहाँ यही बात समझा रहे हैं- पाषाण का बना हुआ मानस्तम्भ अन्य पाषाण के समान है, केवल रत्नमयी होता है; परन्तु अन्य रत्नों का समूह भी उसी की तरह रत्नमयी होता है। हे भगवन्! केवल मानस्तम्भ दृष्टिगोचर होते ही मनुष्यों का मान (अहंकार) रूपी रोग हर लिया जाता है क्योंकि उसमें आपकी समीपता की शक्ति होती है।

[Present in the heavenly-pavilion *(samavasaraṇa)* of the Lord–] The 'pillar-of-pride' *(mānastambha)* is made of stone but there are similar stones at other places; it is studded with gems but there are similar heaps of gems at other places. O Lord! How could the mere sight of the 'pillar-of-pride' *(mānastambha)* vanquish the disease of pride *(māna, ahaṃkāra)* of the onlookers if not for the power it possesses due to your proximity?

EXPLANATORY NOTE

In each of the four directions of the heavenly-pavilion *(samava-saraṇa)* where the congregation of the Lord is held, there is one 'pillar-of-pride' *(mānastambha)*. The mere sight of the 'pillar-of-pride' destroys the pride of the onlookers. The 'pillar-of-pride' is made of stone and is studded with gems much like any other column. How does it get the power of destroying the pride of the

PREVIEW ONLY

onlookers? *Ācārya* Vādirāja answers this question: The 'pillar-of-pride' *(mānastambha)* is made of stone but there are similar stones at other places; it is studded with gems but there are similar heaps of gems at other places. O Lord! How could the mere sight of the 'pillar-of-pride' vanquish the disease of pride *(māna, ahaṃkāra)* of the onlookers if not for the power it possesses due to your proximity?

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही
सद्यः पुंसां निरवधिरुजा धूलिबन्धं धुनोति ।
ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्ट-
स्तस्याशक्यः क इह भुवने देव लोकोपकारः ॥१०॥

hṛdyaḥ prāpto marudapi bhavanmūrtiśailopavāhī
sadyaḥ puṅsāṃ niravadhirujā dhūlibandhaṃ dhunoti |
dhyānāhūto hṛdayakamalaṃ yasya tu tvaṃ praviṣṭa-
stasyāśakyaḥ ka iha bhuvane deva lokopakāraḥ ||10||

अन्वयार्थ – **[देव]** हे भगवन्! **[भवन्मूर्तिशैलोपवाही]** आपके शरीर-रूपी पर्वत के समीप बहने वाली **[हृद्यः]** मनोहर **[मरुत् अपि]** वायु भी **[प्राप्तः 'सन्']** (जिनको) प्राप्त हो, **[पुंसाम्]** (उन) पुरुषों के **[निरवधिरुजा धूलिबन्धम्]** अपरिमित रोग-रूपी धूलि के संसर्ग को (वह वायु) **[सद्यः]** शीघ्र ही **[धुनोति]** दूर कर देती है। **[तु]** फिर **[ध्यानाहूतः]** ध्यान के द्वारा बुलाये गए **[त्वम्]** आप **[यस्य]** जिसके **[हृदयकमलम् प्रविष्टः]** हृदय-रूपी कमल में विराजमान हुए हो **[तस्य]** उस (मनुष्य) को **[इह भुवने]** इस पृथ्वी पर **[कः]** कौन सा **[लोकोपकारः]** लौकिक कल्याण **[अशक्यः 'अस्ति']** प्राप्त नहीं हो सकता? अर्थात् सभी कल्याण प्राप्त होते हैं।

PREVIEW ONLY

भावार्थ - जिनेन्द्र भगवान् की समीपता को प्राप्त सभी दिशाएँ निर्मल हो जाती हैं तथा भूमि भी अत्यन्त सुन्दर तथा धूलि-रहित हो जाती है। शरीर में सुखकर स्पर्श उत्पन्न करने वाली मन्द, शीतल और सुगन्धित वायु बहती है जो सर्व प्राणियों को रोग-मुक्त करने की शक्ति से युक्त होती है। आचार्य वादिराज इस पद्य में कह रहे हैं- हे भगवन्! आपके शरीर-रूपी पर्वत के समीप बहने वाली मनोहर वायु भी जिनको प्राप्त हो, उन पुरुषों के अपरिमित रोग-रूपी धूलि के संसर्ग को वह वायु शीघ्र ही दूर कर देती है। फिर ध्यान के द्वारा बुलाये गए आप जिसके हृदय-रूपी कमल में विराजमान हुए हो उस मनुष्य को इस पृथ्वी पर कौन सा कल्याण प्राप्त नहीं हो सकता? अर्थात् सभी कल्याण प्राप्त होते हैं।

O Lord! Those men who experience just the soothing breeze that flows near your mountain-like body, soon get relieved from the dust in form of infliction of intractable diseases. Then, for the man who beckons you through meditation and establishes you in his heart-lotus, is there any worldly auspiciousness on this earth that cannot be attained? There is none.

Explanatory Note

All directions in proximity to Lord Jinendra become pristine and the earth, too, becomes extremely charming and dust-free. The touch of the gentle, cooling, and fragrant breeze that flows near the Lord provides comfort to the body, and is endowed with the power to cure the diseases of all living-beings. *Ācārya* Vādirāja goes a step further; he says: O Lord! Those men who experience just the soothing breeze that flows near your mountain-like body, soon get relieved from the dust in form of infliction of

PREVIEW ONLY

intractable diseases. Then, for the man who beckons you through meditation and establishes you in his heart-lotus, is there any worldly auspiciousness on this earth that cannot be attained? There is none.

जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि ।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥११॥

jānāsi tvaṃ mama bhavabhave yacca yādṛkca duḥkhaṃ
jātaṃ yasya smaraṇamapi me śastravanniṣpinaṣṭi |
tvaṃ sarveśaḥ sakṛpa iti ca tvāmupeto(a)smi bhaktyā
yatkartavyaṃ tadiha viṣaye deva eva pramāṇam ||11||

अन्वयार्थ – हे भगवन्! **[मम]** मुझे **[भवभवे]** प्रत्येक भव में **[यत् च यादृक् च]** जो और जैसा अर्थात् जिस प्रकार का **[दुःखम् जातम्]** दुःख प्राप्त हुआ है, **[यस्य]** जिसका **[स्मरणम् अपि]** स्मरण भी **[मे]** मुझे **[शस्त्रवत्]** शस्त्र के (आघात के) समान **[निष्पिनष्टि]** पीड़ित करता है **[त्वम् जानासि]** उसे आप जानते हैं। **[त्वम्]** आप **[सर्वेशः]** सब के ईश्वर हैं **[च]** और **[सकृपः]** दया सहित हैं, **[इति भक्त्या त्वाम् उपेतः अस्मि]** इसलिए भक्तिपूर्वक आपके पास आया हूँ। **[इह विषये]** इस विषय में **[यत् कर्तव्यम्]** जो करना चाहिये **[तत् देव एव प्रमाणम्]** उसमें आप ही प्रमाण हैं अर्थात् आप जैसा चाहें वैसा करें।

भावार्थ – इस पद्य में आचार्य वादिराज भगवान् के तीन गुणों का स्मरण कर

PREVIEW ONLY

रहे हैं- आप सर्वज्ञ हैं और इसलिए मेरे भव-भव के दु:खों को जानते हैं, सब के ईश्वर हैं और इसलिए आप मेरे दु:खों को दूर करने में समर्थ हैं, तथा दया सहित हैं और इसलिए आप अवश्य ही मेरे दु:खों को दूर करेंगे। वे कहते हैं- हे भगवन्! मुझे प्रत्येक भव में जो और जैसा अर्थात् जिस प्रकार का दु:ख प्राप्त हुआ है, जिसका स्मरण भी मुझे शस्त्र के आघात के समान पीड़ित करता है, उसे आप जानते हैं। आप सब के ईश्वर हैं और दया सहित हैं, इसलिए भक्ति से आपके पास आया हूँ। इस विषय में जो करना चाहिये उसमें आप ही प्रमाण हैं अर्थात् आप जैसा चाहें वैसा करें।

आचार्य वादिराज इस पद्य में याचना कर रहे हैं कि भगवान् जिनेन्द्र उन्हें उनके अनादि से पीड़ा दे रहे कर्म-बन्धनों से मुक्त करें।

O Lord! You know the name and kind of misery that I have experienced in each state of my worldly existence; even its recollection hurts me as if hit by a weapon. You are the Lord of the world and full of compassion and that is why I have come to you with devotion. In this matter, your decision reigns supreme and, therefore, do as you wish.

Explanatory Note

In this verse, *Ācārya* Vādirāja mentions three attributes of the Lord: You are omniscient and, therefore, know about the miseries that I have experienced in my beginningless cycle of births and deaths, you are the Supreme Lord and, therefore, have the power to rid me of my miseries, and you are full of compassion and, therefore, will certainly do the needful. He says: O Lord! You know the name and kind of misery that I have experienced in each state of my worldly existence; even its

PREVIEW ONLY

recollection hurts me as if hit by a weapon. You are the Lord of the world and full of compassion and that is why I have come to you with devotion. In this matter, your decision reigns supreme and, therefore, do as you wish.

Ācārya Vādirāja, in this verse, is imploring Lord Jinendra to rid him of his beginningless bondage of the karmas.

प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोपि सौख्यं ।
कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम् ॥१२॥

prāpaddaivaṃ tava nutipadairjīvakenopadiṣṭaiḥ
pāpācārī maraṇasamaye sārameyopi saukhyaṃ |
kaḥ saṅdeho yadupalabhate vāsavaśrīprabhutvaṃ
jalpañjāpyairmaṇibhiramalaistvannamaskāracakram ||12||

अन्वयार्थ - **[पापाचारी]** पाप का आचरण करने वाला **[सारमेयः अपि]** कुत्ता भी जब **[मरणसमये]** मृत्यु के समय **[जीवकेन]** जीवन्धरकुमार के द्वारा **[उपदिष्टैः]** उपदेश दिये गए **[तव नुतिपदैः]** आपके नमस्कार मन्त्र के पदों से **[दैवम्]** देव सम्बन्धी **[सौख्यम्]** सुख को **[प्रापत्]** प्राप्त हुआ था (तब) **[अमलैः जाप्यैः मणिभिः]** निर्मल जपने योग्य मणि (माला) के द्वारा **[त्वत् नमस्कार चक्रम्]** आपके नमस्कार मन्त्र के समूह को **[जल्पन्]** जपता हुआ पुरुष **[यत्]** जो **[वासवश्रीप्रभुत्वम्]** इन्द्र की लक्ष्मी के आधिपत्य को **[उपलभते]** प्राप्त होता है, **['अत्र' कः संदेहः]** इसमें क्या सन्देह है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

PREVIEW ONLY

भावार्थ - (यह कथा ग्रन्थ 'छत्रचूडामणि' से अति संक्षेप में उद्धरित है।) इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की राजपुरी नाम की नगरी में क्षत्रिय वंश के सत्यन्धर नाम का राजा था जिसकी विजया नाम की सर्वगुण-सम्पन्न रानी थी। अपनी रानी पर अत्यधिक मोहित होने के कारण राजा सत्यन्धर ने सम्पूर्ण राज्याधिकार काष्टाङ्गार नाम के किसी कर्मचारी को सौंप दिया था। काष्टाङ्गार को यह दुष्टता सूझी कि राजा के जीवित रहते हुए मैं पराधीन सेवक कहलाता हूँ इसलिए राजा को मार कर मुझे स्वतन्त्र हो जाना चाहिये। यह सोच कर उसने राजा को मारने के लिए सेना भेजी। राजा सत्यन्धर ने अपनी मृत्यु निकट जानकर आदेश दे दिया कि गर्भवती रानी विजया को आकाश में उड़ने वाले मयूराकृति के यन्त्र से, जिसे उन्होंने पहले ही बना रखा था, किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाया जाए। संयोग से गर्भवती रानी विजया एक श्मशान में पहुँच गई। उसी नगरी में एक गन्धोत्कट नाम का सेठ रहता था जो उसी श्मशान में अपने नवजात मरे हुए पुत्र को लेकर उसकी मृत्यु-क्रिया करने आया था। उसको किसी मुनिराज ने कहा था कि श्मशान में उसे एक जीवित पुत्र मिलेगा। दैवयोग से सत्यन्धर की पत्नी विजया ने मूर्च्छित अवस्था में एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। तदुपरान्त एक देवी, जो धाय के रूप में प्रकट हुई, ने रानी को यह समझाया कि आप छुप जाओ और गन्धोत्कट सेठ यदि इस बालक को अपने साथ ले जाता है तो इसका लालन-पालन राजपुत्र के जैसा होगा। पुत्र का कल्याण समझ कर रानी छुप गई और गन्धोत्कट सेठ उस नवजात शिशु को अपने घर ले आया। पुत्र को पुनः पाकर सेठ की पत्नी खुशी से फूली न समाई। पुत्र का नाम जीवन्धरकुमार रखा गया।

जीवन्धरकुमार के बड़े होने पर गन्धोत्कट ने उसको सम्पूर्ण विद्या के पारगामी आर्यनन्दी नाम के मुनि के पास भेजा। जीवन्धरकुमार सर्व विद्याओं में अति निपुण हो गया।

इसके अनन्तर एक बार जीवन्धरकुमार जलक्रीड़ा देखने के लिए अपने मित्रों के साथ वन में गए। रास्ते में उन्होंने एक कुत्ता देखा जो हवन-सामग्री को जूठा कर

देने के कारण बुरी तरह से पीटा गया था। जब जीवन्धरकुमार ने देखा कि वह कुत्ता मरणासन्न है तो उन्होंने उसके कानों में पञ्च महामन्त्र का उपदेश दिया। उस महामन्त्र के प्रभाव से वह पापी श्वान मर कर यक्ष जाति के देवों का स्वामी यक्षेन्द्र हुआ और अवधिज्ञान से अपने पूर्व-भव को जान कर अपना उपकार करने वाले जीवन्धरकुमार के समीप आकर उनकी पूजा की।

जीवन्धरकुमार ने अपने इसी जीवनकाल में मुनिपद को धारण किया तथा अन्त में घोर तपश्चरण के द्वारा अष्ट कर्मों का नाश कर मोक्ष-पद को प्राप्त किया था।

इस पद्य में आचार्य वादिराज कहते हैं कि- पाप का आचरण करने वाला कुत्ता भी जब मृत्यु के समय जीवन्धरकुमार के द्वारा उपदेश दिये गए आपके नमस्कार मन्त्र के पदों से देव सम्बन्धी सुख को प्राप्त हुआ था, तब निर्मल जपने योग्य मणिमाला के द्वारा आपके नमस्कार मन्त्र के समूह को जपता हुआ पुरुष यदि इन्द्र की लक्ष्मी के आधिपत्य को प्राप्त होता है, इसमें क्या सन्देह है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

Even the dog, having perverse character, on listening at the time of death the recitation by Jīvandharakumāra of the phrases of the sacred *'Namaskāra mantra'* could attain the bliss appertaining to the devas; can there be any doubt that the man who engages in the incantation of the *Namaskāra mantra* using pristine rosary made of worthy gems attains the grandeur of the lord of the devas? There is no doubt.

Explanatory Note

(This story is an adaptation, in very brief, from the sacred text *'Chatracūḍāmaṇi'*.) In the Bharata region of this Jambūdvīpa, in the town of Rājpurī, there lived a king named Satyandhara of

the Kṣatriya lineage and his queen Vijayā who was endowed with all excellent qualities. Due to his excessive attachment for the queen, king Satyandhara delegated all powers of running his kingdom to a courtier named Kaṣṭāṅgāra. In due course of time, the thought came in the mind of Kaṣṭāṅgāra that as long as the king is alive, he is but a subordinate and, therefore, to be independent he must eliminte the king. He deployed his army to kill the king and it attacked him. King Satyandhara, sensing his imminent death, ordered that his pregnant queen Vijayā be transported to a safe place using the flying-machine that he had built earlier and which was in the shape of a peacock. As things would have it, the pregnant queen Vijayā had to take refuge in a crematorium. In the same town lived a wealthy businessman Gandhotkaṭa. One day Gandhotkaṭa came to the same crematorium to perform rituals on his just-born baby who had died. An accomplished ascetic *(muni)* had earlier told Gandhotkaṭa that he shall get a just-born baby-boy in a crematorium. As per the fate, the same day queen Vijayā, the queen of Satyandhara, gave birth, in a subconscious state, to a beautiful baby-boy. Soon after, a nymph *(devī)* who appeared in form of a foster-mother suggested to queen Vijayā that, in the interest of her child, she should hide herself and leave the child alone. If Gandhotkaṭa, the businessman, takes care of her child, his upbringing shall be like that of a prince. In the interest of her son, queen Vijayā reluctantly hid herself and Gandhotkaṭa happily took possession of the baby-boy and brought him home. His wife's happiness had no bounds seeing the splendid and divine gift in place of her lost child. They named the baby-boy Jīvandharakumāra.

At an appropriate time Gandhotkaṭa sent Jīvandharakumāra for education to an ascetic named Āryanandī, well versed in all spheres of learning. Jīvandharakumāra soon became extremely

PREVIEW ONLY

adept in all learnings.

One day Jīvandharakumāra, along with his friends, proceeded to a forest to watch water-sport. On the way, he saw a dog who was beaten mercilessly for defiling the eatables meant for offering in an oblation. Jīvandharakumāra realized that the dog was almost dead and, out of mercy, he recited in its ears the *'Namaskāra mantra'*. After death, due to the effect of the supreme *Namaskāra mantra*, the dog, although immoral by nature, became the lord of the Yakṣa class of devas. Soon after, the Yakṣa came to know through his clairvoyance that he had attained such a worthy state of being due to the benevolence of Jīvandharakumāra; he came down near Jīvandharakumāra to worship him.

In his same birth, Jīvandharakumāra attained liberation due to his observance of great austerities after accepting the Jaina asceticism.

In this verse, *Ācārya* Vādirāja says: Even the dog, with perverse character, on listening at the time of death the recitation by Jīvandharakumāra of the sacred *'Namaskāra mantra'* could attain the bliss appertaining to the devas; can there be any doubt that the man who engages in the incantation of the *Namaskāra mantra* using pristine rosary made of worthy gems attains the grandeur of the lord of the devas? There is no doubt.

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नो चेदनवधिसुखावञ्चिका कुञ्चिकेयं ।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो
मुक्तिद्वारं परिदृढमहामोहमुद्राकवाटम् ॥१३॥

PREVIEW ONLY

śuddhe jñāne śucini carite satyapi tvayyanīcā
bhaktirno cedanavadhisukhāvañcikā kuñcikeyaṃ |
śakyodghāṭaṃ bhavati hi kathaṃ muktikāmasya puṅso
muktidvāraṃ paridṛḍhamahāmohamudrākavāṭam ||13||

अन्वयार्थ - हे नाथ! **[शुद्धे ज्ञाने]** शुद्ध ज्ञान और **[शुचिनि चरिते]** निर्मल चारित्र के **[सति अपि]** रहते हुए भी **[चेत्]** यदि **[त्वयि]** आपके विषय में होने वाली **[इयम्]** यह **[अनीचा भक्तिः]** उत्कृष्ट भक्ति-रूपी, **[अनवधि सुखावञ्चिका]** असीम सुख को प्राप्त कराने वाली **[कुञ्चिका]** कुंजी **[नो 'स्यात्']** नहीं हो (तर्हि) तो फिर **[हि]** निश्चय से **[मुक्ति कामस्य]** मुक्ति के अभिलाषी **[पुंसः]** पुरुष के लिए **[परिदृढ महामोह मुद्राकवाटम्]** जिस पर अत्यन्त दृढ़ महा-मोह रूपी ताले से बन्द किवाड़ लगे हों ऐसा **[मुक्ति द्वारम्]** मोक्ष-महल का दरवाजा **[शक्योद्घाटं]** खोलने की सामर्थ्य **[कथम् भवति]** किस प्रकार हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती है।

भावार्थ - आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी महान् ग्रन्थ 'रत्नकरण्डकश्रावकाचार' (पद्य 32) में कहते हैं- "बीज के अभाव में वृक्ष (के अभाव) की तरह, सम्यग्दर्शन के न होने पर ज्ञान और चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की उद्भूति नहीं होती है।" इसी परम ग्रन्थ (पद्य 41) में वे कहते हैं- "जिनेन्द्रदेव का भक्त सम्यग्दृष्टि पुरुष अपरिमित प्रतिष्ठा अथवा ज्ञान से सहित इन्द्रसमूह की महिमा को, मुकुटबद्ध राजाओं के मस्तकों से पूजनीय चक्रवर्ती के चक्ररत्न को और समस्त लोक को नीचा करने वाले तीर्थंकर के धर्मचक्र को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त होता है।"

इन्हीं तथ्यों का आचार्य वादिराज इस पद्य में अपनी विशिष्ट शैली में वर्णन कर रहे हैं- हे नाथ! शुद्ध ज्ञान और निर्मल चारित्र के रहते हुए भी यदि आपके विषय में होने वाली यह उत्कृष्ट भक्ति-रूपी, असीम सुख को प्राप्त कराने वाली कुंजी न हो तो फिर निश्चय से मुक्ति के अभिलाषी पुरुष के लिए

अत्यन्त दृढ़ महा-मोह रूपी ताले से बन्द किवाड़ लगे हुए मोक्ष-महल का दरवाजा खोलने की सामर्थ्य किस प्रकार हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती है।

मोक्ष-मार्ग के पथिक के लिए यह आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम अपने दर्शन-मोहनीय कर्मों का क्षय करे। जिनेन्द्र देव में उत्कृष्ट भक्ति के बिना यह सम्भव नहीं है।

O Lord! Even when pristine knowledge and immaculate conduct are present in a man, if he does not own the key, in form of your supreme devotion *(bhakti)* that has the power to bestow ineffable happiness, then how can he, longing for liberation, be expected to have the capability to open the door of the mansion of liberation whose entrance is fastened with very strong lock in form of grave delusion *(moha)*? It is not possible.

Explanatory Note

Ācārya Samantabhadra proclaims in his profound composition *'Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra'* (verse 32): "Just as it is not possible to have a tree in the absence of a seed, there cannot be origination, steadiness, growth, and fruition of (right) knowledge and (right) conduct without having right faith in the first place." Further, in the same treatise (verse 41) he says: "The *bhavya* (having the inherent capacity to attain liberation, and equipped with right faith) devotee of Lord Jina attains the supreme glory and knowledge appertaining to the congregation of the lords of the devas, the divine *cakraratna* of the king of kings (i.e., *cakravartī)* in front of whom the crowned kings must

PREVIEW ONLY

bow down, the divine wheel of dharma *(dharmacakra)* of the *Tīrthaṅkara,* and finally, liberation *(mokṣa).*"

In this verse, *Ācārya* Vādirāja expounds the same facts in his exquisite style: O Lord! A man can possess pristine knowledge and immaculate conduct. But if he does not own the key, in form of your supreme devotion *(bhakti)* that has the power to bestow ineffable happiness, then how can he, longing for liberation, be expected to have the capability to open the door of the mansion of liberation whose entrance is fastened with very strong lock in form of grave delusion *(moha)*? It is not possible.

Destruction of the perception-deluding *(darśana-mohanīya)* karmas is a prerequisite for the attainment of liberation; and, that begins with the supreme devotion to Lord Jina.

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरन्धकारैः समन्ता-
त्पन्था मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः ।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः ॥१४॥

pracchannaḥ khalvayamaghamayairandhakāraiḥ samantā-
tpanthā mukteḥ sthapuṭitapadaḥ kleśagartairagādhaiḥ |
tatkastena vrajati sukhato deva tattvāvabhāsī
yadyagre(a)gre na bhavati bhavadbhāratīratnadīpaḥ ||14||

अन्वयार्थ - [**खलु**] निश्चय से [**अयम्**] यह [**मुक्तेः पन्था**] मुक्ति का मार्ग [**समन्तात्**] सब ओर से [**अघमयैः अन्धकारैः**] पाप-रूपी अन्धकार के द्वारा [**प्रच्छन्नः**] ढ़का हुआ है और [**अगाधैः**] गहरे [**क्लेशगर्तैः**] दु:ख-रूपी गड्ढों के होने के कारण [**स्थपुटितपदः**] ऊबड़-खाबड़ अर्थात्

विषम है। **[देव]** हे देव! **[तत्त्वावभासी]** (जीव-अजीव) तत्त्वों को प्रकाशित करने वाला **[भवद् भारती रत्नदीपः]** आपकी वाणी (दिव्यध्वनि) रूप रत्नों का दीपक **[यदि]** यदि **[अग्रे अग्रे]** आगे-आगे **[न भवति]** नहीं हो **[तत्]** तो **[तेन]** उस (मार्ग से) **[कः]** कौन (पुरुष) **[सुखतः]** सुख से **[व्रजति]** गमन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ - भगवान् जिनेन्द्र को 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' अर्थात् मोक्ष-मार्ग का नेता या प्रवर्तक कहा गया है। भगवान् जिनेन्द्र ने ही अपनी दिव्यध्वनि द्वारा जीव और अजीव द्रव्यों का सम्यक् निरूपण किया है। आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'नियमसार' (गाथा 8) में कहते हैं- "उन परमात्मा (आप्त) के मुख से निकला हुआ वचन, जो कि पूर्वापर - आगे और पीछे - दोष से रहित है और शुद्ध है, उसे 'आगम' कहा गया है और उस (आगम) के द्वारा कहे हुए ही तत्त्वार्थ (द्रव्य) होते हैं।"

आचार्य वादिराज इस पद्य में कहते हैं- निश्चय से यह मुक्ति का मार्ग सब ओर से पाप-रूपी अन्धकार के द्वारा ढ़का हुआ है और गहरे दुःख-रूपी गड्ढों के होने के कारण ऊबड़-खाबड़ अर्थात् विषम है। हे देव! जीव-अजीव तत्त्वों को प्रकाशित करने वाला आपकी दिव्यध्वनि रूपी रत्नों का दीपक यदि आगे-आगे नहीं हो तो उस मार्ग से कौन पुरुष सुख से गमन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

This path to liberation, no doubt, is enveloped from all sides by the darkness of evil *(pāpa)*, and is difficult to tread because of uneven surface with deep potholes in form of miseries *(duḥkha)*. O Lord! If the lamp comprising the gems of your divine-voice *(divyadhvani)* that illumines the objects of Reality *(tattva)*, including the soul *(jīva)* and the non-soul *(ajīva)*, was not there to

PREVIEW ONLY

lead from the front illuminating the path, which man could tread it with felicity? No one could.

EXPLANATORY NOTE

Lord Jina is known as the promulgator of the path to liberation. Supreme Lord Jina has expounded, through his divine-voice, the reality of substances *(dravya)* – the souls *(jīva)* and the non-souls *(ajīva)*. *Ācārya* Kundakunds says in his profound composition *'Niyamasāra'* (verse 8): "Words emanating from the mouth of the Supreme Lord *(āpta, paramātmā)*, free from the fault of inconsistency – contradiction between an earlier and a subsequent statement – and pure, constitute the Scripture *(āgama)*. The Scripture expounds the nature of the substances – *tattvārtha*."

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja says: The path to liberation, no doubt, is enveloped from all sides by the darkness of evil *(pāpa)*, and is difficult to tread because of uneven surface with deep potholes in form of miseries *(duḥkha)*. O Lord! If the lamp comprising the gems of your divine-voice *(divyadhvani)* that illumines the objects of Reality *(tattva)*, including the soul *(jīva)* and the non-souls *(ajīva)*, was not there to lead from the front illuminating the path, which man could tread it with felicity? No one could.

आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानन्दहेतुः
कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषां ।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बन्धप्रकृतिपरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ॥१५॥

ātmajyotirnidhiranavadhirdraṣṭurānandahetuḥ
karmakṣoṇīpaṭalapihito yo(a)navāpyaḥ pareṣāṃ |
haste kurvantyanaticiratastaṃ bhavadbhaktibhājaḥ
stotrairbandhaprakṛtiparuṣoddāmadhātrīkhanitraiḥ ||15||

अन्वयार्थ - **[यः]** यह जो **[आत्मज्योतिः निधिः]** आत्मज्ञान-रूपी सम्पत्ति है वह **[अनवधिः]** सीमा-रहित है, **[द्रष्टुः आनन्दहेतुः]** देखने वाले के लिए आनन्द का कारण है, **[कर्म क्षोणी पटलपिहितः]** कर्म-रूपी पृथ्वी के पटल से ढ़की हुई है और **[परेषाम्]** अन्य (मिथ्यादृष्टि) के लिए **[अनवाप्यः]** अप्राप्य है। **[तम्]** उसे **[भवद् भक्तिभाजः]** आपकी भक्ति को करने वाला (पुरुष) **[बन्धप्रकृति परुषः उद्दाम धात्री खनित्रैः]** प्रकृति-बन्ध (साथ ही स्थिति-बन्ध, अनुभाग-बन्ध तथा प्रदेश-बन्ध) रूप अत्यन्त कठोर भूमि को खोदने के लिए कुदाली स्वरूप **[स्तोत्रैः]** (आपके) स्तोत्रों के द्वारा **[अनतिचिरतः]** बहुत शीघ्र ही **[हस्ते कुर्वन्ति]** हाथ में कर लेता है अर्थात् प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ - जीव और कर्म के योग्य पुद्गलों का एक क्षेत्रावगाही हो जाना बन्ध है। जीव अनादिकाल से कर्मों के अधीन हो रहा है जिससे उसे नर, नारक आदि नाना गतियों में परिभ्रमण करना पड़ता है। आचार्यप्रवर उमास्वामी महाराज ग्रन्थराज 'तत्त्वार्थयूत्र' (सूत्र 8-3) में कहते हैं- "उस बन्ध के प्रकृति-बन्ध, स्थिति-बन्ध, अनुभव-बन्ध (अनुभाग-बन्ध) और प्रदेश-बन्ध; ये चार भेद हैं।" जीव को कर्मों के बन्धन से मुक्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

आचार्य वादिराज इसी बात को पुष्ट करते हुए कहते हैं- यह जो आत्मज्ञान-रूपी सम्पत्ति है वह सीमा-रहित है, देखने वाले के लिए आनन्द का कारण है, कर्म-रूपी पृथ्वी के पटल से ढ़की हुई है और अन्य अर्थात् मिथ्यादृष्टि के लिए अप्राप्य है। हे भगवन्! उसे आपकी भक्ति को करने वाला पुरुष बन्ध के चार भेदों (प्रकृति-बन्ध, स्थिति-बन्ध, अनुभाग-बन्ध तथा प्रदेश-बन्ध) रूप

अत्यन्त कठोर भूमि को खोदने के लिए कुदाली स्वरूप आपके स्तोत्रों के द्वारा बहुत शीघ्र ही हाथ में कर लेता है अर्थात् प्राप्त कर लेता है।

The wealth of the soul-knowledge is infinite, a source of happiness for the viewers, covered with the karmas in form of the heap of earth, and unavailable to the others (the wrong-believers). O Lord! The man who engages in your devotion *(bhakti)* very soon makes it (the wealth of the soul-knowledge) accessible, through the hymns of your praise which act as the pickaxe to dig the extremely hard earth in form of the bondage of the karmas – the species *(prakṛti)* [including – the duration *(sthiti)*, the fruition *(anubhava* or *anubhāga)*, and the quantity of space-points *(pradeśa)*].

Explanatory Note

Since beginningless time, the soul *(jīva)* is bound with subtle matter capable of turning into karmas and pervading the same space-points as those of the soul. This is called bondage *(bandha)*. Due to the bondage of the karmas, the soul continually keeps on its worldly existence by being born in modes like the human-being and the infernal-being. *Ācārya* Umāsvāmī says in *'Tattvārthasūtra'* (*sūtra* 8-3): "Bondage *(bandha)* is of four kinds: according to the nature or species – *prakṛti*, duration – *sthiti*, fruition – *anubhava (*or *anubhāga)*, and the quantity of space-points – *pradeśa*." It is extremely difficult to free the soul from the bondage of the karmas.

PREVIEW ONLY

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja explains the same fact: The wealth of the soul-knowledge is infinite, a source of happiness for the viewers, covered with the karmas in form of the heap of earth, and unavailable to the others (the wrong-believers). O Lord! The man who engages in your devotion *(bhakti)* very soon accesses this wealth of the soul-knowledge through the hymns of your praise which act as the pickaxe to dig the extremely hard earth in form of the bondage of the four kinds of karmas – the species *(prakṛti)*, the duration *(sthiti)*, the fruition *(anubhava* or *anubhāga)*, and the quantity of space-points *(pradeśa)*.

प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धे-
र्यादेव त्वत्पदकमलयोः संगता भक्तिगङ्गा ।
चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥१६॥

pratyupannā nayahimagirerāyatā cāmṛtābdhe-
ryādeva tvatpadakamalayoḥ saṅgatā bhaktigaṅgā |
cetastasyāṃ mama rucivaśādāplutaṃ kṣālitāṅhaḥ
kalmāṣaṃ yadbhavati kimiyaṃ deva saṅdehabhūmiḥ ||16||

अन्वयार्थ - [**देव**] हे देव! [**नयहिमगिरेः**] (स्याद्वाद तथा) नय-रूपी हिमालय पर्वत से [**प्रत्युत्पन्ना**] उत्पन्न हुई [**च**] और [**अमृताब्धेः**] मोक्ष-रूपी समुद्र तक [**आयता**] लम्बी [**या**] जो [**त्वत्पदकमलयोः**] आपके चरणकमल सम्बन्धी [**भक्तिगङ्गा**] भक्ति-रूपी गंगा [**संगता**] प्राप्त हुई है, [**तस्याम्**] उसमें [**रुचिवशात्**] श्रद्धा के वश होकर [**आप्लुतम्**]

स्नान करने से **[मम]** मेरा **[चेतः]** मन **[यत्]** जो **[क्षालितांहः कल्माषम्]** धुल गई है पाप-रूपी कालिमा जिसकी ऐसा **[भवति]** हो रहा है; **[देव]** हे देव! **[इयम्]** यह **[किम्]** क्या **[संदेहभूमिः]** सन्देह का स्थान है? अर्थात् नहीं है।

भावार्थ - भगवान् जिनेन्द्र के मुखकमल से निकली स्याद्वाद तथा नय रूपी वाणी जैन दर्शन को एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। स्याद्वाद तथा नय के सिद्धान्त पर सम्पूर्ण जैन आगम आधारित है और इसको आत्मसात् करने वाला भव्य-पुरुष मोक्ष-मार्ग पर अविरोध आरोहण करता है। आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'आप्तमीमांसा' (श्लोक 14) में कहते हैं- "हे वीर जिन! आपके शासन में वस्तु-तत्त्व कथञ्चित् सत्-रूप ही है, कथञ्चित् असत्-रूप ही है। इसी प्रकार अपेक्षाभेद से वह वस्तु-तत्त्व कथञ्चित् उभय-रूप और कथञ्चित् अवक्तव्य-रूप ही है। (कथञ्चित् सत् और अवक्तव्य-रूप, कथञ्चित् असत् और अवक्तव्य-रूप तथा कथञ्चित् सत्, असत् और अवक्तव्य-रूप ही है।) नय की अपेक्षा से वस्तु-तत्त्व सत् आदि रूप है, सर्वथा नहीं।" आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ही ग्रन्थराज 'स्वयम्भूस्तोत्र' (श्लोक 13-1-61) में भगवान् विमलनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं- "ये जो नित्य-अनित्य, सत्-असत् आदि एकान्तरूप नय हैं वे परस्पर एक-दूसरे से निरपेक्ष होकर अर्थात् स्वतन्त्र रह कर अपना व दूसरों का नाश करने वाले हैं। न तो कहने वाले का भला होता है न ही सुनने वाले का। परन्तु आप प्रत्यक्षज्ञानी व सर्व-दोषरहित विमलनाथ भगवान् के मत में वे ही नित्य-अनित्य आदि नय एक दूसरे की अपेक्षा रखते हुए अपना व दूसरों का उपकार करने वाले होकर यथार्थ तत्त्व स्वरूप होते हैं।"

आचार्य वादिराज इसी बात का विस्तार कर रहे हैं- हे देव! स्याद्वाद तथा नय रूपी हिमालय पर्वत से उत्पन्न हुई और मोक्ष-रूपी समुद्र तक लम्बी जो आपके चरणकमल सम्बन्धी भक्ति-रूपी गंगा मुझे प्राप्त हुई है, उसमें श्रद्धा के वश

होकर स्नान करने से मेरा मन ऐसा हो गया है जिसकी पाप-रूपी कालिमा धुल गई है; इसमें किसी प्रकार के सन्देह का क्या कोई स्थान है? अर्थात् नहीं है।

O Lord! The devotion *(bhakti)* to your Lotus-Feet is like the river Ganges that originates from the Himalaya mountain in form of the concept of standpoints *(naya)* [together with the doctrine of conditional predication – *syādvāda*] and covers the long distance up to the ocean of liberation *(mokṣa)*. O Lord! Is there place for any doubt that my heart which is taking bath, out of firm faith, in this river is getting rid of all dirt in form of the mire of the evil karmas? There is no doubt.

Explanatory Note

The Words coming out of the mouth of Lord Jinendra that employ the doctrine of conditional predication – *syādvāda* – and the concept of standpoints *(naya)* give the Jaina philosophy a unique place among all philosophies. The whole of Jaina Scripture *(āgama)* is based on these principles and the man who internalises these truths treads the path to liberation without impediments. *Ācārya* Samantabhadra Svāmī says in *'Āpta-mīmaṃsā'* (verse 14): "O Lord! In your reckoning, the object of knowledge is in a way existing *(sat)*; in a way non-existing *(asat)*; in a way both existing and non-existing (*sat* as well as *asat* – *ubhaya*); and in a way indescribable *(avaktavya)* [further, as a corollary, in a way existing *(sat)* and indescribable *(avaktavya)*; in a way non-existing *(asat)* and indescribable *(avaktavya)*; and in a way existing *(sat)*, non-existing *(asat)*, and indescribable

PREVIEW ONLY

(avaktavya)]. Each assertion is made in respect to the particular standpoint *(naya)* and holds true with respect to that standpoint only, not absolutely." Further, *Ācārya* Samantabhadra Svāmī, in adoration of *Tīrthaṅkara* Vimalanātha, says in *'Svayambhū-stotra'* (verse 13-1-61): "O Unblemished Lord Vimalanātha! Those who hold the one-sided, standalone points of view such as describing a substance absolutely permanent *(nitya)* or transient *(kṣaṇika)*, harm themselves and others, but as you had proclaimed, when the assertions are understood to have been made only from certain standpoints, these reveal the true nature of substances, and, therefore, benefit self as well as others."

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja explains the same fact: O Lord! The devotion *(bhakti)* to your Lotus-Feet is like the river Ganges that originates from the Himalaya mountain in form of the concept of standpoints *(naya)* and the doctrine of conditional predication – *syādvāda* – and covers the long distance up to the ocean of liberation *(mokṣa)*. O Lord! Is there place for any doubt that my heart which is taking bath, out of firm faith, in this river is getting rid of all dirt in form of the mire of the evil karmas? There is no doubt.

प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख! त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा ।
मिथ्यैवेयं तदपितनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां
दोषात्मानोप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति ॥१७॥

prādurbhūtasthirapadasukha! tvāmanudhyāyato me
tvayyevāhaṃ sa iti matirutpadyate nirvikalpā |
mithyaiveyaṃ tadapitanute tṛptimabhreṣarūpāṃ
doṣātmānopyabhimataphalāstvatprasādādbhavanti ||17||

अन्वयार्थ - **[प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख!]** जिनके स्थायी (मोक्ष) पद का सुख प्रकट हुआ है, ऐसे हे जिनेन्द्रदेव! **[त्वाम् अनुध्यायतः मे]** आपका निरन्तर ध्यान करते हुए मेरी **[त्वयि]** आप में **[अहं सः एव]** 'मैं भी वही हूँ' अर्थात् 'मैं आप जैसा ही हूँ' **[इति]** ऐसी **[निर्विकल्पा]** निर्विकल्प **[मतिः]** बुद्धि **[उत्पद्यते]** उत्पन्न होती है। **[इयम् मिथ्या एव]** (यद्यपि) यह (बुद्धि) मिथ्या ही है **[तदपि]** तथापि **[अभ्रेषरूपाम्]** अविनश्वर **[तृप्तिम्]** तृप्ति (सुख) को **[तनुते]** विस्तृत कर देती है। **[त्वत्प्रसादात्]** (ठीक है कि) आपके प्रसाद से **[दोषात्मानः अपि]** सदोष आत्मा भी **[अभिमतफलाः]** इच्छित फल को प्राप्त **[भवन्ति]** हो जाती है।

भावार्थ - निश्चय नय और व्यवहार नय सब नयों के मूलभूत भेद हैं। निश्चय का हेतु द्रव्यार्थिक नय है और साधन अथवा व्यवहार का हेतु पर्यायार्थिक नय है। इस पद्य में निश्चय नय तथा व्यवहार नय अथवा द्रव्यार्थिक नय तथा पर्यायार्थिक नय का समन्वय अत्यन्त कुशलता से किया गया है। इसमें भेद-विज्ञान तथा बहिरात्मा-अन्तरात्मा-परमात्मा के स्वरूप की झलक मिलती है। आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थराज 'नियमसार' (गाथा 96) में कहते हैं- "ज्ञानी जीव इस प्रकार चिन्तवन करते हैं कि केवलज्ञान-स्वभावी, केवलदर्शन-स्वभावी, (अनन्त) सुखमय और केवलशक्ति-स्वभावी, वह मैं हूँ।" आचार्यप्रवर पूज्यपाद ग्रन्थराज 'समाधितन्त्रम्' (श्लोक 70) में कहते हैं- "मैं गौरा हूँ, मोटा हूँ अथवा पतला हूँ, इस प्रकार शरीर के साथ एकरूप न करते हुए सदैव अपने आत्मा को केवलज्ञानस्वरूप अथवा रूपादि-रहित एवं उपयोग-सहित अपने चित्त में धारण करें।"

आचार्य वादिराज निश्चय नय तथा व्यवहार नय का अत्यन्त सरल रूप में चित्रण कर रहे हैं- जिनके स्थायी मोक्ष-पद का सुख प्रकट हुआ है, ऐसे हे जिनेन्द्रदेव! आपका निरन्तर ध्यान करते हुए मेरी आप में 'मैं भी वही हूँ' अर्थात् 'मैं आप जैसा ही हूँ', ऐसी निर्विकल्प बुद्धि उत्पन्न होती है। यद्यपि यह बुद्धि मिथ्या प्रतीत होती है तथापि अविनश्वर तृप्ति (सुख) को विस्तृत कर देती है। ठीक है कि आपके प्रसाद से मेरे जैसी सदोष आत्मा भी इच्छित फल को प्राप्त हो जाती है।

O Lord! The eternal bliss (of liberation) has manifested in you. While meditating on you an undifferentiated *(nirvikalpa)* thought that 'I am the same', or 'I am like you' comes to my mind. Although this kind of thought is not true but still it provides me with everlasting happiness. It is right; due to your benevolence even the blemished soul attains the desired fruit.

Explanatory Note

The primary divisions of the standpoints *(naya)* are the real or transcendental standpoint *(niścaya naya)* and the empirical standpoint *(vyavahāra naya)*. The representation of the real or transcendental *(niścaya)* is the standpoint of the substance – *dravyārthika naya* – and of the empirical *(vyavahāra)* is the standpoint of the mode – *paryāyārthika naya*. In the present verse, these standpoints come to the fore in a subtle manner. It also gives a glimpse of the science-of-discrimination *(bheda-vijñāna)* and the extroverted-introverted-pure soul *(bahirātmā-antarātmā-paramātmā)*. *Ācārya* Kundakunda Svāmī says in

PREVIEW ONLY

'Niyamasāra' (verse 96): "The knowing Self – *jñānī* – meditates thus: 'I am of the nature of infinite-knowledge *(kevalajñāna)*, infinite-perception *(kevaladarśana)*, infinite-bliss *(ananta-sukha)* and infinite-strength *(kevalaśakti)*'." Further, *Ācārya* Pūjyapāda says in *'Samādhitaṅtram'* (verse 70): "Shunning thoughts such as, 'I am fair-skinned,' 'I am stout,' and 'I am skinny,' one should disconnect the body and the soul, and reflect incessantly on the nature of the pure soul, characterized by infinite knowledge and perception."

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja explains the real or transcendental standpoint *(niścaya naya)* and the empirical standpoint *(vyavahāra naya)* in very simple terms: O Lord! The eternal bliss (of liberation) has manifested in you. While meditating on you an undifferentiated *(nirvikalpa)* thought that 'I am the same', or 'I am like you' comes to my mind. Although this kind of thought is not true but still it provides me with everlasting happiness. It is right; due to your benevolence even the blemished soul, like mine, attains the desired fruit.

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गीतरङ्गै-
र्वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव! पर्येति यस्ते ।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन
व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवन्ति ॥१८॥

mithyāvādaṃ malamapanudansaptabhaṅgītaraṅgai-
rvāgambhodhirbhuvanamakhilaṃ deva! paryeti yaste |
tasyāvṛttiṃ sapadi vibudhāścetasaivācalena
vyātanvantaḥ suciramamṛtāsevayā tṛpnuvanti ||18||

अन्वयार्थ - **[देव!]** हे देव! **[ते]** आपका **[यः]** जो **[वागम्भोधिः]** वचन (दिव्यध्वनि) रूपी समुद्र है **[सप्तभङ्गीतरङ्गैः]** (वह) सप्तभंगी रूपी तरंगों के द्वारा **[मिथ्यावादम् मलम्]** मिथ्यावाद रूपी मल को **[अपनुदन्]** हटाता हुआ **[अखिलम् भुवनम् पर्येति]** समस्त संसार को वेष्टित कर रहा है अर्थात् व्याप्त का रहा है। **[विबुधाः]** देवगण अथवा बुद्धिमान् (पुरुष) **[चेतसा एव अचलेन]** मन-रूप मन्दरगिरि (पर्वत) के द्वारा **[तस्य]** उस (वचन रूपी समुद्र) का **[आवृत्तिम्]** मन्थन अथवा निरन्तर अभ्यास **[व्यातन्वन्तः]** करते हुए **[सपदि]** शीघ्र ही **[अमृतासेवया]** अमृतपान अथवा मोक्ष-प्राप्ति से **[सुचिरम्]** हमेशा के लिए **[तृप्नुवन्ति]** सन्तुष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ - प्रो. उदयचन्द्र जैन (2012, पृ. 97-98) 'आप्तमीमांसा' की प्रस्तावना में लिखते हैं- स्याद्वाद वस्तु के अनन्त धर्मों का प्रतिपादन सात भंगों और नयों की अपेक्षा से करता है। सप्तभंगी निम्न प्रकार से बनती है- 1) स्यादस्ति घटः, 2) स्यान्नास्ति घटः, 3) स्यादस्ति-नास्ति घटः, 4) स्यादवक्तव्यो घटः, 5) स्यादस्ति अवक्तव्यश्च घटः, 6) स्यान्नास्ति अवक्तव्यश्च घटः, 7) स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यश्च घटः।

आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'आप्तमीमांसा' (श्लोक 104) में कहते हैं- "सर्वथा एकान्त का त्याग करके कथञ्चित् विधान करने का नाम स्याद्वाद है। (इसलिए कथञ्चित् आदि शब्द स्याद्वाद के पर्यायवाची हैं।) स्याद्वाद सप्तभंगों और नयों की अपेक्षा को लिए रहता है तथा हेय और उपादेय का विशेषक (भेदक) होता है।"

आचार्य वादिराज इस पद्य में भगवान् द्वारा प्रतिपादित सप्तभंगी के सिद्धान्त के निरन्तर अभ्यास की महत्ता समझा रहे हैं- हे देव! आपका जो दिव्यध्वनि रूपी समुद्र है वह सप्तभंगी रूपी तरंगों के द्वारा मिथ्यावाद रूपी मल को हटाता हुआ समस्त संसार को वेष्टित कर रहा है अर्थात् व्याप्त का रहा है। इस पद्य में 'विबुधाः', 'आवृत्तिम्' तथा 'अमृतासेवया' पदों के दो-दो अर्थ होने से अन्त

के दो चरणों के दो अर्थ हैं। 1) देवगण मन-रूप मन्दरगिरि पर्वत के द्वारा उस वचन रूपी समुद्र का मन्थन अथवा निरन्तर अभ्यास करते हुए शीघ्र ही अमृतपान करने से अमर हो जाते हैं। 2) बुद्धिमान् पुरुष मन-रूप मन्दरगिरि पर्वत के द्वारा उस वचन रूपी समुद्र का निरन्तर अभ्यास करते हुए शीघ्र ही मोक्ष (अनन्त सुख) को प्राप्त कर लेते हैं।

O Lord! Your divine-voice *(divyadhvani)* is an ocean with waves in form of the 'seven-nuance system' *(saptabhaṅgī)* that is encompassing the whole world, removing simultaneously the dirt in form of the false narrative. The celestial-beings or, as another meaning, the wise men, use their minds like the sacred Mount Mandara as the churning stick, churn the ocean or, as another meaning, study constantly the ocean of your Words; they attain everlasting bliss in terms of the nectar of life or, as another meaning, attain the state of liberation.

Explanatory Note

Syādvāda consists in seven vocal statements adorned by the qualifying clause 'in a way' – *syāt*. When in regard to a single entity – soul, etc. – an enquiry is made relating to its attribute – existence, etc. – with an all-round examination there is the possibility of seven statements, adorned by the term 'quodammodo' or 'in a way' *(syāt)*. This is called the 'seven-nuance system' *(saptabhaṅgī)*.

1. **स्याद् अस्ति एव** *(syād-asti-eva)*

   In a way it simply is; this is the first 'nuance', with the

PREVIEW ONLY

notion of affirmation.

2. **स्याद् नास्ति एव** *(syād-nāsti-eva)*
   In a way it simply is not; this is the second 'nuance', with the notion of negation.
3. **स्याद् अवक्तव्य एव** *(syād-avaktavya-eva)*
   In a way it is simply indescribable; this is the third 'nuance', with the notion of *simultaneous* affirmation and negation.
4. **स्याद् अस्ति नास्ति एव** *(syād-asti-nāsti-eva)*
   In a way it simply is, in a way it simply is not; this is the fourth 'nuance', with the notion of *successive* affirmation and negation.
5. **स्याद् अस्ति अवक्तव्य एव** *(syād-asti-avaktavya-eva)*
   In a way it simply is, in a way it is simply indescribable; this is the fifth 'nuance', with the notion of affirmation and the notion of simultaneous affirmation and negation.
6. **स्याद् नास्ति अवक्तव्य एव** *(syād-nāsti-avaktavya-eva)*
   In a way it simply is not, in a way it is simply indescribable; this is the sixth 'nuance', with the notion of negation and the notion of simultaneous affirmation and negation.
7. **स्याद् अस्ति नास्ति अवक्तव्य एव** *(syād-asti-nāsti-avaktavya-eva)*
   In a way it simply is, in a way it simply is not, in a way it is simply indescribable; this is the seventh 'nuance', with the successive notions of affirmation and negation, and the notion of simultaneous affirmation and negation.

Ā*cārya* Samantabhadra Svāmī says in *'Āptamīmaṃsā'* (verse 14): "Discarding the absolutist *(ekānta)* point of view and observing the practice of using the word *'kathañcit'* – 'from a

PREVIEW ONLY

certain viewpoint', or 'in a respect', or 'under a certain condition' – is what is known as *syādvāda* – the doctrine of conditional predication. It embraces the seven limbs *(sapta-bhaṅga)* of assertion, the one-sided but relative method of comprehension *(naya)*, and also the acceptance and rejection of the assertion."

Ācārya Vādirāja, in the present verse, emphasises the importance of continuous practice of the principle of the 'seven-nuance system' *(saptabhaṅgī)*: O Lord! Your divine-voice *(divyadhvani)* is an ocean with waves in form of the 'seven-nuance system' *(saptabhaṅgī)* that is encompassing the whole world, removing simultaneously the dirt in form of the false narrative. The last two lines of the verse can be interpreted in two ways: 1) The celestial-beings use their minds like the sacred Mount Mandara as the churning stick, churn the ocean of your Words and they attain everlasting bliss in terms of the nectar of life. 2) The wise men use their minds like the sacred Mount Mandara as the churning stick, study constantly the ocean of your Words and they attain everlasting bliss in terms of the state of liberation.

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः ।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किञ्च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥

PREVIEW ONLY

āhāryebhyaḥ spṛhayati paraṃ yaḥ svabhāvādahṛdyaḥ
śastragrāhī bhavati satataṃ vairiṇā yaśca śakyaḥ |
sarvāṅgeṣu tvamasi subhagastvaṃ na śakyaḥ pareṣāṃ
tatkiṃ bhūṣāvasanakusumaiḥ kiñca śastrairudastraiḥ ||19||

अन्वयार्थ - [**यः**] जो [**स्वभावात्**] स्वभाव से [**अहृद्यः**] असुन्दर [**भवति**] होता है (वही) [**परम्**] अतिशय रूप से [**आहार्येभ्यः स्पृहयति**] वस्त्र-आभूषण आदि को चाहता है। [**च**] और [**यः**] जो [**वैरिणा**] शत्रु के द्वारा [**शक्यः 'भवति'**] शक्य होता है अर्थात् जीता जा सकने योग्य है (वही) [**सततम्**] निरन्तर [**शस्त्रग्राही**] शस्त्र को धारण करने वाला होता है। [**त्वम्**] (हे भगवन्!) आप [**सर्वाङ्गेषु**] सर्वांग-रूप से [**सुभगः असि**] सुन्दर हो (और) [**न त्वम् परेषाम् शक्यः**] न आप शत्रुओं से जीते जा सकने योग्य हो, [**तत् 'भवतः'**] इसलिए आपको [**भूषावसन कुसुमैः**] आभूषण, वस्त्र तथा फूलों से [**किम्**] क्या प्रयोजन है? [**च**] और [**उदस्त्रैः शस्त्रैः किम्**] अस्त्रों तथा शस्त्रों से क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

भावार्थ - यह सर्वविदित है कि जिस व्यक्ति के शरीर, मन अथवा प्रतिष्ठा से सम्बन्धित कुछ भी न्यूनतायें हैं, उसी व्यक्ति को उन न्यूनताओं को ढकने के लिए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों, आभूषणों अथवा कृत्रिम उपकरणों का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार से जिस व्यक्ति को किसी भी प्रकार का भय होता है, वही व्यक्ति अपने साथ विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र अथवा अंगरक्षक रखता है।

आचार्य वादिराज इस पद्य में समझा रहे हैं कि वीतराग भगवान् के लिए ये सब बाह्य वस्तुएँ अकिञ्चित्कर हैं- जो स्वभाव से असुन्दर होता है वही अतिशय रूप से वस्त्र-आभूषण आदि को चाहता है और जो शत्रु के द्वारा जीता जा सकने योग्य है वही निरन्तर शस्त्र को धारण करने वाला होता है। हे भगवन्!

आप सर्वांग-रूप से सुन्दर हो और न ही आप शत्रुओं से जीते जा सकने योग्य हो, इसलिए आपको आभूषण, वस्त्र तथा फूलों से क्या प्रयोजन है, और अस्त्रों तथा शस्त्रों से भी क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

Only the person who, by nature, is unattractive longs intensely for clothes and ornamnets. And, only the person who is vulnerable and liable to be conquered by the enemy keeps arms constantly. O Lord! Your whole body is attractive and you are unconquerable by enemies. Why would you, therefore, need either the oranments, clothes and flowers to adorn your body or the weaponry as protection from enemies? You need nothing.

Explanatory Note

It is well-known that the person who lacks in respect of bodily beauty, mental disposition or social prestige takes recourse to several kinds of clothes, ornaments and artificial aids to overcome the shortcomings. In the same manner, the person who is fearful keeps arms, ammunition and bodyguards.

Ācārya Vādirāja, in the present verse, emphasises that all external appurtenances are absolutely infructuous for the Supreme Lord who is rid of all attachment; he says: Only the person who, by nature, is unattractive longs intensely for clothes and ornamnets. And, only the person who is vulnerable and liable to be conquered by the enemy keeps arms. O Lord! Your whole body is attractive and you are unconquerable by enemies. Why would you, therefore, need either the oranments, clothes

PREVIEW ONLY

and flowers to adorn your body or the weaponry as protection from enemies?

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति ।
त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धिकान्तापतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थं ॥२०॥

indraḥ sevāṃ tava sukurutāṃ kiṃ tayā ślāghanaṃ te
tasyaiveyaṃ bhavalayakarī ślāghyatāmātanoti |
tvaṃ nistārī jananajaladheḥ siddhikāntāpatistvaṃ
tvaṃ lokānāṃ prabhuriti tava ślāghyate stotramitthaṃ ||20||

अन्वयार्थ - हे भगवन्! **[इन्द्रः]** इन्द्र **[तव]** आपकी **[सेवाम्]** सेवा को **[सुकुरुताम्]** अच्छी तरह से करे **[तया]** उससे **[ते]** आपकी **[किम्]** क्या **[श्लाघनम्]** प्रशंसा है? **[इयम्]** यह सेवा तो **[तस्या एव]** उस (इन्द्र) की ही **[भवलयकरी]** संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली **[श्लाघ्यताम्]** प्रशंसा को **[आतनोति]** विस्तृत करती है। **[त्वम्]** आप **[जननजलधेः]** संसार-समुद्र से **[निस्तारी]** तारने वाले हो, **[त्वम्]** आप **[सिद्धिकान्ता पतिः]** मोक्ष-रूपी स्त्री के स्वामी हो, तथा **[त्वम्]** आप **[लोकानाम्]** तीनों लोकों के (प्राणियों के) **[प्रभुः]** अधिपति हो। **[इत्थम्]** इस प्रकार **[इति]** यह **[तव]** आपकी **[स्तोत्रम्]** स्तुति **[श्लाघ्यते]** प्रशंसनीय है।

भावार्थ - यदि काई व्यक्ति किसी अन्य पुरुष की सेवा करता है तो यह

PREVIEW ONLY

आवश्यक नहीं है कि वह अन्य पुरुष प्रशंसनीय ही हो। हाँ, यदि वह अन्य पुरुष प्रशंसनीय हो तो सेवा करने वाले व्यक्ति का उपकार तो हो ही जाता है। इसीलिए जब भगवान् के पाँचों कल्याणकों में उपस्थित होकर इन्द्र उनकी सेवा-स्तुति करता है तो वह सेवा-स्तुति उसके संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली होती है। भगवान् की वास्तविक प्रशंसा तो उनके गुणों की स्तुति करने से होती है। वह इस प्रकार से है- हे जिनेन्द्र भगवान्! आप मोक्ष-मार्ग के प्रवर्तक (नेता) हैं, आप सर्वज्ञ हैं, आपने जीव और अजीव तत्त्वों का सम्यक् निरूपण किया है, आपने घतिया कर्मों का समूल नाश किया है, आप लक्ष्मी के निवास-स्थान हैं, आपकी वाणी हितकर, मधुर एवं विशद है, तथा आपने भव (संसार) पर विजय प्राप्त की है, आदि-आदि।

आचार्य वादिराज इस पद्य में यही बात समझा रहे हैं- हे भगवन्! इन्द्र आपकी सेवा को अच्छी तरह से करे उससे आपकी क्या प्रशंसा है? यह सेवा तो उस इन्द्र की ही संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली प्रशंसा को विस्तृत करती है। आप संसार-समुद्र से तारने वाले हो, आप मोक्ष-रूपी स्त्री के स्वामी हो, तथा आप तीनों लोकों के प्राणियों के अधिपति हो। इस प्रकार यह आपकी स्तुति प्रशंसनीय है।

O Lord! How can you become praiseworthy if it be said that Indra does your service in a laudable manner? It is only for Indra that his service becomes praiseworthy as it results in the destruction of his worldly-existence. You are the redeemer from the worldly-ocean, you are the lord of the liberation-dame, you are the saviour of the living-beings in the three worlds. This kind of your adoration is laudable.

PREVIEW ONLY

EXPLANATORY NOTE

When a man presents himself in service of another man, it is not necessary that the man being served is praiseworthy. However, if the man being served is praiseworthy, service to him certainly provides benefit to the server. Therefore, when Indra presents himself in the service and adoration of Lord Jina during the five most auspicious events – *pañca kalyāṇaka* – he (the Indra), in the process, certainly destroys his whirling in the world. The true adoration of Lord Jina consists in praising his supreme qualities. For example: O Lord Jina! You are the promulgator of the path to liberation; being omniscient, you are the knower of the whole of Reality; you are the expounder of the reality of substances, the souls *(jīva)* and the non-souls *(ajīva)*; your Words are beneficial, pleasing and unambiguous for the three worlds; and you are the conquerer of the cycle of births and rebirths.

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja explains: O Lord! How can you become praiseworthy if Indra comes forward to serve you in a laudable manner? His service to you makes only him praiseworthy as it results in the destruction of his own worldly-existence. "You are the redeemer from the worldly-ocean, you are the lord of the liberation-dame, you are the saviour of the living-beings in the three worlds." This kind of your adoration is worthy and laudable.

The worshipper knows that his own soul, from the transcendental point-of-view *(niścaya naya),* is pure like that of Lord Jina; he longs for the attainment of the same supreme qualities.

PREVIEW ONLY

वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येनतुल्यः
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते ।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टा-
स्ते भव्यानामभिमतफलाः पारिजाता भवन्ति ॥२१॥

vṛttirvācāmaparasadṛśī na tvamanyenatulyaḥ
stutyudgārāḥ kathamiva tatastvayyamī naḥ kramante |
maivaṃ bhūvaṅstadapi bhagavanbhaktipīyuṣapuṣṭā-
ste bhavyānāmabhimataphalāḥ parijātā bhavanti ||21||

अन्वयार्थ - **[भगवन्]** हे भगवन्! **[वाचाम् वृत्तिः अपरसदृशी 'न']** आपके वचनों की प्रवृत्ति (किसी) दूसरे के समान नहीं है, **[न त्वम् अन्येन तुल्यः]** न आप (किसी) दूसरे के सदृश हैं, **[ततः]** उस कारण से **[नः]** हमारे **[अमी]** ये **[स्तुति उद्गाराः]** स्तुति के उद्गार **[त्वयि]** आपके विषय में **[कथम् इव]** किस प्रकार से **[क्रमन्ते]** योग्य हो सकते हैं? अथवा **[एवम् मा भूवन्]** ऐसा न हो (हमारे उद्गार योग्य न हों) **[तदपि]** तो भी **[भक्तिपीयूषपुष्टाः]** भक्ति-रूपी अमृत से पुष्ट हुए **[ते]** वे (स्तुति के उद्गार) **[भव्यानाम्]** भव्य जीवों को **[अभिमतफलाः]** इच्छित फल देने वाले **[पारिजाताः]** कल्पवृक्ष **[भवन्ति]** होते हैं।

भावार्थ - आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'स्वयम्भूस्तोत्र' (श्लोक 18-1-86) में भगवान् अरनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं- "हे अरनाथ जिन! गुणों की अल्पता का उल्लंघन करके उनकी अधिकता का कथन करना स्तुति कहलाती है। किन्तु आपके गुण तो अनन्त हैं इसलिए उनका वर्णन करना अशक्य है, तब आपकी स्तुति किस प्रकार संभव है?" इसी ग्रन्थ में (श्लोक 21-1-116) वे भगवान् नमिनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं- "जिनेन्द्र

PREVIEW ONLY

भगवान् की स्तुति भव्य पुरुष, पुण्य-साधक (स्तोता) के शुभ परिणाम के लिए होती है। चाहे उस समय स्तुत्य (स्तुति का आराध्य देव) विद्यमान हो या न हो, और चाहे स्तुति करने वाले भव्य पुरुष (स्तोता) को स्तुत्य के द्वारा स्वर्गादि फल की प्राप्ति होती हो या न होती हो। इस प्रकार जगत् में स्वाधीनता से कल्याण-मार्ग के सुलभ होने पर कौन विवेकी पुरुष है जो सर्वदा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य श्री नमिनाथ जिनेन्द्र की स्तुति न करे?" आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'स्तुतिविद्या' (श्लोक 81) में भगवान् कुन्थुनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं- "हे जन्म-मरण से रहित कुन्थुनाथ भगवान्! आप अत्यन्त शुद्ध हैं। आप कुन्थुनाथ भगवान् को नमस्कार करने वाला पुरुष पृथ्वी-लोक में सब तरह के रोगों से रहित होता है और परलोक में मोक्ष के लिये गमन करता है, अथवा स्वर्ग में उत्पन्न होता है।"

आचार्य वादिराज इस पद्य में कुछ इसी प्रकार के भाव प्रकट कर रहे हैं- हे भगवन्! आपके वचनों की प्रवृत्ति किसी दूसरे के समान नहीं है, न आप किसी दूसरे के सदृश हैं। इस कारण से हमारे ये स्तुति के उद्गार आपके विषय में किस प्रकार से योग्य हो सकते हैं? हमारे उद्गार आपके विषय में योग्य न हों तो भी भक्ति-रूपी अमृत से पुष्ट हुए वे उद्गार भव्य जीवों को इच्छित फल देने वाले कल्पवृक्ष होते हैं।

O Lord! The way your divine-voice *(divyadhvani)* originates is exquisite and no one possesses the same kind of voice; also, you are not similar to anyone else. As a result, how can our expressions of your adoration match your attributes? Although our expressions of your adoration are not worthy, still, being nourished with the nectar of your devotion *(bhakti)*, these are like the wish-fulfilling-tree *(kalpavṛkṣa)* that provides the

PREVIEW ONLY

desired fruit to the worthy *(bhavya)* souls.

Explanatory Note

Ācārya Samantabhadra Svāmī, in adoration of *Tīrthaṅkara* Aranātha, says in *'Svayambhūstotra'* (verse 18-1-86): "O Lord Aranātha Jina! Extolling the virtues of a man involves transgression of his existent qualities by exaggerated expressions, but it is impossible to express your infinite virtues and, as such, how can one extol you?" In the same treatise, in adoration of *Tīrthaṅkara* Naminātha (verse 21-1-116), he says: "The worship of Lord Jina must result in propitious outcomes for the worthy and noble worshipper, whether or not the Lord being worshipped is present (with reference to time and space) and whether or not the worshipper is bestowed with boons (like heavenly abode) by the Lord. Even after the availability of such a self-dependent path to emancipation, which wise man will not engage himself in the praise of the supremely worshipful Lord Naminātha Jina?" *Ācārya* Samantabhadra Svāmī, in adoration of *Tīrthaṅkara* Kunthunātha (verse 81), says in his yet another masterpiece treatise *'Stutividyā'*: "O Lord Kunthunātha, you are rid of the cycle of births and deaths! You are utterly pristine. The man who makes obeisance to you gets rid of all kinds of diseases in this world, and, in the world next, heads for liberation. Or else, he takes birth as a celestial being."

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja expresses the same sentiments: The way your divine-voice *(divyadhvani)* originates is exquisite and no one possesses the same kind of voice. You are not similar to anyone else. Our expressions of your adoration, therefore, are unable to match your attributes. Although our expressions of your adoration are not worthy, still, being

PREVIEW ONLY

nourished with the nectar of your devotion *(bhakti)*, these are like the wish-fulfilling-tree *(kalpavṛkṣa)* that has the power to provide the desired fruit to the worthy *(bhavya)* souls.

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम् ।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वैरहारी
क्वैवंभूतं भुवनतिलक! प्राभवं त्वत्परेषु ॥२२॥

kopāveśo na tava na tava kvāpi deva! prasādo
vyāptaṃ cetastava hi paramopekṣayaivānapekṣam |
ājñāvaśyaṃ tadapi bhuvanaṃ sannidhirvairahārī
kvaivaṅbhūtaṃ bhuvanatilaka! prābhavaṃ tvatpareṣu ||22||

अन्वयार्थ - **[देव!]** हे भगवन्! (यद्यपि) **[तव]** आपका **[क्वापि]** किसी पर **[न कोपावेशो]** न क्रोधमय भाव होता है और **[न 'क्वापि' तव प्रसादः]** न किसी पर आपकी प्रसन्नता होती है। **[हि]** निश्चय से **[तव]** आपका **[चेतः]** चित्त **[अनपेक्षम्]** स्वार्थ-रहित है और **[परमोपेक्षया एव]** अत्यन्त उपेक्षा (उदासीनता) से ही **[व्याप्तम्]** व्याप्त है। **[तदपि]** तो भी **[भुवनम्]** संसार **[आज्ञावश्यम्]** आपकी आज्ञा के अधीन है और **[सन्निधिः]** (आपकी) निकटता **[वैरहारी]** (परस्पर के) वैर को हरने वाली है। **[भुवनतिलक!]** हे संसार के तिलक! **[एवंभूतम्]** ऐसा **[प्राभवम्]** स्वामित्व (प्रभुत्व) **[त्वत्परेषु]** आपसे भिन्न **[क्व]** किसमें है? अर्थात् किसी में नहीं।

भावार्थ – आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'स्वयम्भूस्तोत्र' (श्लोक 12-2-57) में भगवान् वासुपूज्य की स्तुति करते हुए कहते हैं- "हे नाथ! आप वीतराग हैं इसलिए आपको अपनी पूजा होने से कोई प्रयोजन नहीं है। आप वैर रहित हैं इसलिए आपको अपनी निन्दा होने से भी कोई प्रयोजन नहीं है। तो भी आपके पवित्र गुणों का स्मरण हमारे चित्त को पापरूपी मल से पवित्र कर ही देता है।" आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ही ग्रन्थराज 'स्तुतिविद्या' (श्लोक 29) में भगवान् सुपार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कहते हैं- "हे सुपार्श्वनाथ भगवान्! आप स्तुति करने वाले और कोप (निन्दा) करने वाले दोनों के विषय में समान ही हैं, क्योंकि आप अग्नि के समान नहीं हैं अपितु अति-निर्मल – राग-द्वेष से रहित – हैं। आप असहाय (अथवा प्रधान) होते हुए भी नेता के समान आश्रय करने योग्य हैं।"

आचार्य वादिराज इस पद्य में समझा रहे हैं- हे भगवन्! यद्यपि आपका किसी पर न क्रोधमय भाव होता है और न किसी पर आपकी प्रसन्नता होती है। निश्चय से आपका चित्त स्वार्थ-रहित है और अत्यन्त उपेक्षा अर्थात् उदासीनता से ही व्याप्त है। तो भी संसार आपकी आज्ञा के अधीन है और आपकी निकटता परस्पर के वैर को हरने वाली है। हे संसार के तिलक! ऐसा स्वामित्व (प्रभुत्व) आपसे भिन्न किसमें है? अर्थात् किसी में नहीं।

O Lord! You entertain neither the disposition of anger nor of joy for anyone. Certainly, your heart bears no self-interest and is filled with extreme indifference *(upekṣā)* or equanimity. Still, the world is subservient to your command, and your proximity rids the men of their mutual enmity. O Supreme Lord of the World! Who, other than you, has such lordship? No one.

PREVIEW ONLY

EXPLANATORY NOTE

Ācārya Samantabhadra Svāmī, in adoration of *Tīrthaṅkara* Vāsupūjya, says in *'Svayambhūstotra'* (verse 12-2-57): "O Wise Lord! You had conquered all attachment and, therefore, do not pay heed to worship; you entertain no aversion and, therefore, do not pay heed to calumny. Still, just the thought of your auspicious qualities washes the evil mire of karmic matter from our hearts." In adoration of *Tīrthaṅkara* Supārśvanātha (verse 29) the same author, in his yet another composition *'Stutividyā'*, says: "O Lord Supārśvanātha! Since you are utterly pristine – rid of attachment *(rāga)* and aversion *(dveṣa)* – not like the fire, therefore, you exhibit equanimity in respect of both, those who adore you and those who denigrate you. Although you are self-dependent, still you are fit to be a refuge to others."

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja says: O Lord! You entertain neither the disposition of anger nor of joy for anyone. Certainly, your heart bears no self-interest and is filled with extreme indifference *(upekṣā)* or equanimity. Still, the world is subservient to your command, and your proximity rids the men of their mutual enmity. O Supreme Lord of the World! Who, other than you, has such lordship? No one.

देव! स्तोतुं त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्तिं
तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः ।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जाहूर्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थस्मरणविषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥२३॥

deva! stotuṃ tridivagaṇikāmaṇḍalīgītakīrtiṃ
totūrti tvāṃ sakalaviṣayajñānamūrtiṃ jano yaḥ |
tasya kṣemaṃ na padamaṭato jātu jāhūrti panthā-
stattvagranthasmaraṇaviṣaye naiṣa momūrti martyaḥ ||23||

अन्वयार्थ - **[देव!]** हे भगवन्! **[त्रिदिवगणिकामण्डलीगीतकीर्तिम्]** स्वर्ग की अप्सराओं के समूह द्वारा जिनकी कीर्ति गायी गई है ऐसे तथा **[सकलविषयज्ञानमूर्तिम्]** सर्व पदार्थों को विषय करने वाले ज्ञान की मूर्ति-स्वरूप **[त्वाम्]** आपका **[स्तोतुं]** स्तवन करने के लिए **[यः जनः]** जो मनुष्य **[तोतूर्ति]** शीघ्रता करता है, **[तस्य]** उस (पुरुष) का **[क्षेमम् पदम् अटतः]** कल्याणकारी पद अर्थात् मोक्ष-पद के लिए गमन करने वाला **[पन्थाः]** मार्ग **[जातु]** कभी **[न जाहूर्ति]** कुटिल नहीं होता है। और **[न एष मर्त्यः]** न यह मनुष्य **[तत्त्वग्रन्थस्मरणविषये]** सिद्धान्त ग्रन्थों के स्मरण के विषय में **[मोमूर्ति]** मूर्च्छा को प्राप्त होता है।

भावार्थ - आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्डक-श्रावकाचार' (श्लोक 4) में कहा है कि सम्यग्दृष्टि पुरुष आप्त (जिनदेव), आगम (श्रुत) तथा तपोभृत (गुरु) में सच्चा श्रद्धान करता है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी 'समाधि भक्ति' (श्लोक 2) में लगभग यही बात कह रहे हैं- "हे प्रभो! जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक मेरे जन्म-जन्मान्तर में ये चीजें मुझे प्राप्त होती रहें- 1) जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गए शास्त्रों का अभ्यास बना रहे; 2) जिनेन्द्रदेव की स्तुति करता रहूँ; 3) आर्य-पुरुषों (सज्जन, श्रेष्ठ पुरुषों) की संगति में रहूँ; 4) संयमियों अथवा चारित्रधारियों की कथा में लीन रहूँ; 5) किसी के भी दोष कहने में मेरा मौनव्रत हो; 6) सबके साथ बोलते हुए मेरे मुख से प्रिय और हितकर वचन निकलें; और 7) मेरी भावना सदा आत्मतत्त्व में बनी रहे।" स्पष्ट है कि जिन-भक्त पुरुष श्रुत का स्वाध्याय अत्यन्त श्रद्धा तथा रुचि से करता है।

आचार्य वादिराज इस पद्य में जिन-भक्ति के फल को समझा रहे हैं- हे भगवन्! स्वर्ग की अप्सराओं के समूह द्वारा जिनकी कीर्ति गायी गई है ऐसे तथा सर्व पदार्थों को विषय करने वाले ज्ञान की मूर्ति-स्वरूप आपका स्तवन करने के लिए जो मनुष्य शीघ्रता करता है, उस पुरुष का कल्याणकारी पद अर्थात् मोक्ष-पद के लिए गमन करने वाला मार्ग कभी कुटिल नहीं होता है। और न यह मनुष्य सिद्धान्त ग्रन्थों के स्मरण के विषय में मूर्च्छा को प्राप्त होता है। अर्थात् शीघ्र ही महान् पण्डित बन जाता है।

O Lord! Your glory is sung by the groups of celestial damsels and you are the epitome of knowledge that encompasses all objects of the world; the man who is ever-eager to perform your adoration experiences that his path to eternal bliss (or liberation) has become free from all crookedness. Further, such a man never gets to delusion in respect of the scriptural texts.

Explanatory Note

Ācārya Samantabhadra Svāmī says in *'Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra'* (verse 4) that the right-believer *(samyagdṛṣṭi)* carries true faith in the sect-founder or deity (the Jinadeva), the Scripture (*āgama* or *śruta*) and the preceptor (*tapobhṛt* or *guru*). *Ācārya* Pūjyapāda expresses almost the same sentiment in *'Samādhi Bhakti'* (verse 2): "O Lord! In this life and in all future lives, till I attain liberation, may I be endowed with the following attributes: 1) study of the Scripture expounded by Lord Jina; 2) adoration of Lord Jina; 3) company of the noble and virtuous men; 4) engagement in the stories of men with excellent

PREVIEW ONLY

restraint and conduct; 5) observing the vow of silence *(mauna)* when it comes to censuring others; 6) speaking only words that are appealing and favourable to others; and 7) centering on own soul-substance *(ātmatattva)* only." It is clear that the person with deep devotion to Lord Jina studies the Scripture, essentially the Word of Lord Jina, with great reverence and interest.

In the present verse, *Ācārya* Vādirāja expands on the fruit of devotion to Lord Jina: O Lord! Your glory is sung by the groups of celestial damsels and you are the epitome of knowledge that encompasses all objects of the world; the man who is ever-eager to perform your adoration experiences that his path to eternal bliss (or liberation) has become free from all crookedness. Further, such a man never gets to delusion in respect of the scriptural texts. He soon becomes a learned scholar.

चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं
देव! त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति ।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा
कल्याणानां भवतिविषयः पञ्चधापञ्चितानाम् ॥२४॥

citte kurvanniravadhisukhajñānadṛgvīryarūpaṃ
deva! tvāṃ yaḥ samayaniyamādādareṇa stavīti |
śreyomārgaṃ sa khalu sukṛtī tāvatā pūrayitvā
kalyāṇānāṃ bhavativiṣayaḥ pañcadhāpañcitānām ||24||

अन्वयार्थ - **[देव!]** हे भगवन्! **[यः]** जो मनुष्य **[निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्य रूपम्]** अनन्त सुख, ज्ञान, दर्शन और वीर्य स्वरूप **[त्वाम्]** आपको **[चित्ते कुर्वन्]** हृदय में धारण करता हुआ **[समयनियमात्]** समय के नियम से अर्थात् निश्चित समय तक **[आदरेण]** आदरपूर्वक **[स्तवीति]** स्तुति करता है **[सः]** वह **[सुकृती]** पुण्यात्मा **[खलु]** निश्चय से **[तावता]** उतने ही से अर्थात् उस स्तवन मात्र से **[श्रेयोमार्गम्]** मोक्ष-मार्ग को **[पूरयित्वा]** पूर्ण करके **[पञ्चधा पञ्चितानाम् कल्याणानाम्]** पाँच प्रकार से विस्तृत पाँच कल्याणकों (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण) का **[विषयः भवति]** विषय होता है अर्थात् इन कल्याणकों को प्राप्त होता है।

भावार्थ - चार घातिया कर्मों - मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय - का सम्पूर्ण क्षय हो जाने पर भगवान् अनन्त चतुष्टय से शोभायमान होते हैं। ये अनन्त चतुष्टय हैं-

1) अनन्त सुख
2) अनन्त ज्ञान
3) अनन्त दर्शन और
4) अनन्त वीर्य।

प्रत्येक तीर्थंकर भगवान् का जीवन पञ्च-कल्याणकों से शोभायमान होता है; इन कल्याणकों में भगवान् की स्तुति के लिए देवों तथा मनुष्यों के अधिनायक उपस्थित होते हैं। ये पञ्च-कल्याणक इस प्रकार से हैं-

1) गर्भ-कल्याणक
2) जन्म-कल्याणक
3) तप-कल्याणक
4) ज्ञान-कल्याणक और
5) निर्वाण-कल्याणक (मोक्ष-कल्याणक)।

आचार्य वादिराज इस पद्य में समझा रहे हैं कि तीर्थंकर भगवान् की नियमित

स्तुति से भव्य मनुष्य स्वयं तीर्थंकर की विभूति को प्राप्त करता है- हे भगवन्! जो मनुष्य अनन्त सुख, ज्ञान, दर्शन और वीर्य स्वरूप आपको हृदय में धारण करता हुआ समय के नियम से अर्थात् निश्चित समय तक आदरपूर्वक स्तुति करता है वह पुण्यात्मा निश्चय से उतने ही से अर्थात् उस स्तवन मात्र से मोक्ष-मार्ग को पूर्ण करके पाँच प्रकार से विस्तृत पञ्च-कल्याणकों (गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण) का विषय होता है अर्थात् इन कल्याणकों को प्राप्त होता है।

आचार्य मानतुङ्ग 'भक्तामर स्तोत्र' (श्लोक 10) में ऐसा ही भाव व्यक्त करते हैं- "उस स्वामी से क्या प्रयोजन जो अपने आश्रित को इस लोक में सम्पत्ति के द्वारा अपने समान नहीं करता है?"

O Lord! You are endowed with the four infinitudes *(ananta catuṣṭaya)* comprising infinite bliss, knowledge, perception and energy. It is certain that the meritorious man who after establishing you in his heart does your adoration with reverence and for a predetermined time completes, as a result of just this adoration, his journey of the path to liberation and attains the splendour of the five kinds of the most auspicious events, called the *pañca kalyāṇaka – garbha, janma, tapa, jñāna,* and *nirvāṇa* – for himself.

Explanatory Note

The Supreme Lord *(paramātmā)* is rid of the four inimical *(ghātīyā)* karmas – deluding *(mohanīya)*, knowledge-obscuring *(jñānāvaraṇīya)*, perception-obscuring *(darśanāvaraṇīya)*, and

PREVIEW ONLY

obstructive *(antarāya)*. On destruction of these karmas manifest the following four infinitudes *(ananta catuṣṭaya)*:

1. *anantasukha* – infinite bliss;
2. *anantajñāna* – infinite knowledge;
3. *anantadarśana* – infinite perception; and
4. *anantavīrya* – infinite energy.

Lord *Tīrthaṅkara* is worshipped by the lords of the devas and the men during the five most auspicious events *(pañca kalyāṇaka)* in his life:

1. *garbha-kalyāṇaka:* when the soul of the *Tīrthaṅkara* enters the Mother's womb.
2. *janma-kalyāṇaka:* on the birth of the *Tīrthaṅkara*.
3. *tapa-kalyāṇaka* (or *dīkṣā-kalyāṇaka):* when the *Tīrthaṅkara* renounces all worldly possessions and becomes an ascetic.
4. *jñāna-kalyāṇaka:* when the *Tīrthaṅkara* attains omniscience *(kevalajñāna)*.
5. *nirvāṇa-kalyāṇaka* (or *mokṣa-kalyāṇaka):* when the *Tīrthaṅkara* finally attains liberation *(mokṣa* or *nirvāṇa)* and becomes a *Siddha*.

Ācārya Vādirāja explains here that the worthy man who, with devotion and time-discipline, engages himself in the adoration of the *Tīrthaṅkara* attains the same kind of splendour: O Lord! You are endowed with the four infinitudes *(ananta catuṣṭaya)* comprising infinite bliss, knowledge, perception and energy. It is certain that the meritorious man who after establishing you in his heart does your adoration with reverence and for a pre-determined time completes, as a result of just this adoration, his journey of the path to liberation and attains the splendour of the five most auspicious events in the life of the *Tīrthaṅkara*, called

PREVIEW ONLY

the *pañca kalyāṇaka – garbha, janma, tapa, jñāna,* and *nirvāṇa* – for himself.

Ācārya Mānatuṅga in *'Bhaktāmara Stotra'* (verse 10) expresses similar sentiments: "For sure, what is the use of that master in this world who does not provide support to the dependant in order to make him equally affluent?"

(शार्दुलविक्रीडित छन्द)

भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम् ।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥२५॥

bhaktiprahvamahendrapūjitapada tvatkīrtane na kṣamāḥ
sūkṣmajñānadṛśo(a)pi saṅyamabhṛtaḥ ke hanta mandā vayam |
asmābhiḥ stavanacchalena tu parastvayyādarastanyate
svātmādhīnasukhaiṣiṇāṃ sa khalu naḥ kalyāṇakalpadrumaḥ
||25||

अन्वयार्थ – **[भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद]** भक्ति से नम्रीभूत इन्द्रों के द्वारा जिनके चरण पूजित हुए हैं ऐसे हे जिनेन्द्र देव! **[सूक्ष्मज्ञानदृशः]** सूक्ष्म ज्ञान ही जिनके नेत्र हैं ऐसे **[संयमभृतः अपि]** (गणधर आदि) महर्षि भी **[त्वत्कीर्तने]** आपका स्तवन करने में जब **[क्षमाः न 'सन्ति']** समर्थ नहीं हैं तब **[हन्त]** खेद है कि **[वयम् मन्दा के]** हम मन्दबुद्धि कौन हैं (जो आपकी

स्तुति करने में समर्थ हों)? **[तु]** तथापि **[स्तवनच्छलेन]** स्तुति के छल से **[अस्माभिः]** हमारे द्वारा **[त्वयि परः आदरः तन्यते]** आपके विषय में उत्कृष्ट आदर-भाव विस्तृत किया जाता है। **[खलु]** निश्चय से **[सः स्वात्माधीनसुखैषिणां]** वह (उत्कृष्ट आदर-भाव) ही निज आत्मा के सुख की इच्छा करने वाले **[नः]** हमारे लिए **[कल्याणकल्पद्रुमः 'अस्ति']** कल्याण-कारी कल्पवृक्ष है।

भावार्थ - हे भगवन्! आपके गुण अनन्त हैं। आपकी स्तुति के लिए मुख्य-मुख्य बत्तीस इन्द्र (भवनवासी 10, व्यन्तर 8, ज्योतिषी 2 और कल्पवासी 12) मस्तक झुका कर आपको नमस्कार करते हैं तथा यथाशक्ति आपका स्तवन करते हैं। अनेक ऋद्धियों से युक्त गणधरदेव तथा सूक्ष्म रूप से चारों ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय) के धारक महर्षि भी आपके अनन्त गुणों का वर्णन करने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं। फिर मैं अल्पज्ञ आपका स्तवन करने में कैसे समर्थ हो सकता हूँ? मेरे द्वारा यह जो आपका स्तवन है वह तो छल-मात्र है। तथापि मेरा आपके प्रति जो समर्पण व आदर-भाव है वही मुझ मोक्ष के अभिलाषी के लिए परम सुख का प्रदाता होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

आचार्य वादिराज इस पद्य में यही भावना व्यक्त कर रहे हैं- भक्ति से नम्रीभूत इन्द्रों के द्वारा जिनके चरण पूजित हुए हैं ऐसे हे जिनेन्द्र देव! सूक्ष्म ज्ञान ही जिनके नेत्र हैं ऐसे गणधर आदि महर्षि भी आपका स्तवन करने में जब समर्थ नहीं हैं तब खेद है कि हम मन्दबुद्धि कौन हैं जो आपकी स्तुति करने में समर्थ हों? तथापि स्तुति के छल से हमारे द्वारा आपके विषय में उत्कृष्ट आदर-भाव विस्तृत किया जाता है। निश्चय से वह उत्कृष्ट आदर-भाव ही निज आत्मा के सुख की इच्छा करने वाले हमारे लिए कल्याणकारी कल्पवृक्ष है।

आचार्य वादिराज अपने स्तवन के अन्त में 'कल्याणकल्पद्रुमः' पद का प्रयोग कर रहे हैं जो इस रचना की उपयोगिता को सम्यक् रूप से दर्शाता है। इस

PREVIEW ONLY

कारण से उनकी इस **'एकीभाव स्तोत्र'** रचना को **'कल्याणकल्पद्रुम'** के नाम से भी जाना जाता है।

O Lord Jinendra! Your Feet are worshipped by the Indras who bow down in front of you. When even the supreme ascetics [like the Apostles *(gaṇadhara)*], endowed with the eyes of minutely precise knowledge, are not able to perform your true adoration *(stuti)*, then alas! who are we, the dim-witted beings? However, our unbound disposition of reverence for you manifests as an illusion of your adoration *(stuti)*. Certainly for us, longing for own soul-happiness, the same (unbound disposition of reverence for you) manifests as an auspicious wish-fulfilling tree *(kalpavṛkṣa)*.

Explanatory Note

O Lord! You have infinite qualities. During your adoration *(stuti)* the thirty-two main Indras [the residential *(bhavanavāsī)* - 10, the peripatetic *(vyantara)* - 8, the stellar *(jyotiṣī)* - 2, and the heavenly *(kalpavāsī)* - 12] bow down in front of you and praise you according to their calibre. Even the Apostles *(gaṇadhara)* who are endowed with many accomplishments *(ṛddhi)* and the supreme ascetics who possess precise and minute knowledge of the four kinds [sensory *(mati)*, scriptural *(śruta)*, clairvoyance *(avadhi)* and telepathy *(manaḥparyaya)*] find themselves unable to make your adoration *(stuti)*. How can I, with feeble intellect, make your adoration? Your adoration that I seem to be engaged in is only a deception. However, I am certain that my devotion

PREVIEW ONLY

and reverence for you shall bring forth for me the ineffable happiness that I long for.

Ācārya Vādirāja puts forward the same sentiments in this verse: O Lord Jinendra! Your Feet are worshipped by the Indras who bow down in front of you. When even the supreme ascetics [like the Apostles *(gaṇadhara)*], endowed with the eyes of minutely precise knowledge, are not able to perform your true adoration *(stuti)*, then alas! who are we, the dim-witted beings? However, our unbound disposition of reverence for you manifests as an illusion of your adoration *(stuti)*. Certainly for us, longing for own soul-happiness, the same unbound disposition of reverence for you manifests as an auspicious wish-fulfilling tree *(kalpavṛkṣa)*.

Ācārya Vādirāja ends this composition with the phrase *'Kalyāṇakalpadruma'* which expresses precisely the importance of this composition. This composition ***'Ekībhāva Stotra'***, therefore, is also known as ***'Kalyāṇakalpadruma'***.

प्रशस्ति

ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रशस्ति आचार्य वादिराज की विद्वता पर मुग्ध हो किसी अन्य शिष्य अथवा विद्वान ने 'एकीभाव स्तोत्र' के अन्त में लिख दी है जिसे अब इस स्तोत्र के समापन के रूप में ही माना जाता है।

It appears that, influenced by his wisdom, the following verse in praise of *Ācārya* Vādirāja has been composed by a later disciple or scholar. However, this is now generally accepted as the last verse of *'Ekībhāva Stotra'*.

PREVIEW ONLY

(स्वागता छन्द)

वादिराजमनु शाब्दिकलोको
वादिराजमनु तार्किकसिंहः ।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते
वादिराजमनु भव्यसहायः ॥२६॥

vādirājamanu śābdikaloko
vādirājamanu tārkikasiṅhaḥ |
vādirājamanu kāvyakṛtaste
vādirājamanu bhavyasahāyaḥ ||26||

अन्वयार्थ - **[शाब्दिकलोकः]** वैयाकरण अर्थात् व्याकरण शास्त्र के ज्ञाता **[वादिराजमनु]** वादिराज से हीन हैं, **[तार्किकसिंहः]** श्रेष्ठ नैयायिक अर्थात् तार्किक **[वादिराजमनु]** वादिराज से हीन हैं, **[ते काव्यकृतः]** प्रसिद्ध कविजन **[वादिराजमनु]** वादिराज से हीन हैं, और **[भव्यसहायः]** सज्जनगण (भी) **[वादिराजमनु]** वादिराज से हीन हैं।

भावार्थ - 'एकीभाव स्तोत्र' के रचयिता आचार्य वादिराज सबसे श्रेष्ठ वैयाकरण अर्थात् व्याकरण शास्त्र के ज्ञाता, नैयायिक अर्थात् तार्किक, कवि और सहृदय पुरुष हुए हैं।

All grammarians are outclassed by *Ācārya* Vādirāja; fine logicians are outclassed by *Ācārya* Vādirāja; famed poets are outclassed by *Ācārya* Vādirāja; and noble men are outclassed by *Ācārya* Vādirāja.

PREVIEW ONLY

॥ इति श्रीवादिराजाचार्यप्रणीतमेकीभावस्तोत्रम् समाप्तम् ॥

This concludes
***Ācārya* Vādirāja's *'Ekībhāva Stotra'*.**

* * *

Victory (Vijay) makes obeisance humble
at the Worshipful Feet of ***Ācārya* Vādirāja**
whose unparalleled composition ***'Ekībhāva Stotra'***
in adoration of Lord Ādinātha, the first *Tīrthaṅkara,* has
benefited many worthy souls in this world.

* * *

परिशिष्ट-१ **APPENDIX-1**

REFERENCES AND GRATEFUL ACKNOWLEDGMENT

संदर्भ सूची एवं कृतज्ञता ज्ञापन

All that is contained in this book has been excerpted, adapted, or translated into English from a number of authentic Jaina texts. Due care has been taken to conserve the essence of the holy Scripture composed by the ancient preceptors *(pūrvācārya)*.

Contribution of the following publications in preparation of the present volume is gratefully acknowledged:

1. अनुवादक - पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, अनुवादिका - गणिनी आर्यिका श्री स्याद्वादमती माताजी (2004), **पञ्चस्तोत्र संग्रह,** भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत परिषद्, चतुर्थ संस्करण.
2. भाषाकार - पं. पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य (1940; वीर सं. 2466), **पंचस्तोत्र संग्रह,** मूलचन्द किसनदास कापड़िया, गाँधी चौक, सूरत.
3. पद्यानुवाद - मुनि अजितसागर (2014), **एकीभाव स्तोत्र विधान**, प्रकाश शोध संस्थान, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण.
4. सम्पादक एवं अनुवादक - विजय कुमार जैन (2020), **आचार्य समन्तभद्र विरचित स्तुतिविद्या (जिनशतक, जिनस्तुतिशतं),** विकल्प प्रिन्टर्स, देहरादून.
5. सम्पादन-अनुवाद - डॉ. पन्नालाल जैन 'साहित्याचार्य' (2004), **आचार्य जिनसेन विरचित आदिपुराण,** भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110003, दसवाँ संस्करण.
6. सम्पादन-अनुवाद - डॉ. पन्नालाल जैन 'साहित्याचार्य' (2003), **आचार्य जिनसेन विरचित हरिवंशपुराण,** भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110003, आठवाँ संस्करण.
7. अनुवाद - पं. निद्धामल मैत्तल (वीर सं. 2447), **श्रीमद्वादीभीमसिंह सूरि विरचित छत्रचूड़ामणिः,** प्रकाशक पं. निद्धामल मैत्तल.
8. लेखक तथा सम्पादक - प्रो. उदयचन्द्र जैन (2012), **आचार्य समन्तभद्र विरचित आप्तमीमांसा (तत्त्वदीपिका व्याख्या),** श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, नरिया, वाराणसी-221005, द्वितीय संस्करण.
9. डॉ. ए. एन. उपाध्ये एवं सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री (2014), **आचार्य**

नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति रचित गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, छठा संस्करण.

10. Jain, Vijay K. (2015), "*Ācārya Samantabhadra's Svayambhūstotra – Adoration of The Twenty-four Tīrthaṅkara",* Vikalp Printers, Dehradun.
11. Jain, Vijay K. (2016), *"Ācārya Samantabhadra's Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra – The Jewel-casket of Householder's Conduct*", Vikalp Printers, Dehradun.
12. Jain, Vijay K. (2016), *"Ācārya Samantabhadra's Āptamīmāṃsā (Devāgamastotra) – Deep Reflection On The Omniscient Lord",* Vikalp Printers, Dehradun.
13. Jain, Vijay K. (2017), *"Ācārya Pūjyapāda's Samādhitaṅtram – Supreme Meditation",* Vikalp Printers, Dehradun.
14. Jain, Vijay K. (2018), *"Ācārya Umāsvamī's Tattvārthasūtra – With Explanation in English from Ācārya Pūjyapāda's Sarvārthasiddhi*", Vikalp Printers, Dehradun.
15. Jain, Vijay K. (2019), *"Ācārya Kundakunda's Niyamasāra – The Essence of Soul-adoration (With Authentic Explanatory Notes)*", Vikalp Printers, Dehradun.
16. Jain, Vijay K. (2019), *"Ācārya Guṇabhadra's Ātmānuśāsana – Precept on the Soul",* Vikalp Printers, Dehradun.
17. Jain, Vijay K. (2022), *"Ācārya Pūjyapāda's Bhakti Saṃgraha – Collection of Devotions",* Vijay Kumar Jain, Dehradun.
18. Jain, Vijay K. (2022), *"Ācārya Pūjyapāda's Bhakti Saṃgraha – Collection of Devotions",* Vijay Kumar Jain, Dehradun.
19. Jain, Vijay K. (2023), *"Ācārya Mānatuṅga's Bhaktāmara Stotra – With Hindi and English Rendering",* Vijay Kumar Jain, Dehradun.

* * *

GUIDE TO TRANSLITERATION

Devanāgarī	*IAST**	*Devanāgarī*	*IAST*	*Devanāgarī*	*IAST*
अ	*a*	घ	*gha*	प	*pa*
आ	*ā*	ङ	*ṅa*	फ	*pha*
इ	*i*	च	*ca*	ब	*ba*
ई	*ī*	छ	*cha*	भ	*bha*
उ	*u*	ज	*ja*	म	*ma*
ऊ	*ū*	झ	*jha*	य	*ya*
ए	*e*	ञ	*ña*	र	*ra*
ऐ	*ai*	ट	*ṭa*	ल	*la*
ओ	*o*	ठ	*ṭha*	व	*va*
औ	*au*	ड	*ḍa*	श	*śa*
ऋ	*ṛ*	ढ	*ḍha*	ष	*ṣa*
ऌ	*ḷ*	ण	*ṇa*	स	*sa*
अं	*ṃ*	त	*ta*	ह	*ha*
अः	*ḥ*	थ	*tha*	क्ष	*kṣa*
क	*ka*	द	*da*	त्र	*tra*
ख	*kha*	ध	*dha*	ज्ञ	*jña*
ग	*ga*	न	*na*	श्र	*śra*

**IAST: International Alphabet of Sanskrit Transliteration*

* * *

Sacred Jaina Texts Edited and Translated by Vijay K. Jain

Shri Amritachandra Suri's
Puruṣārthasiddhyupāya

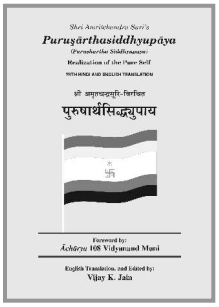

Rs. 350/-

Ācārya Pūjyapāda's
Iṣṭopadeśa

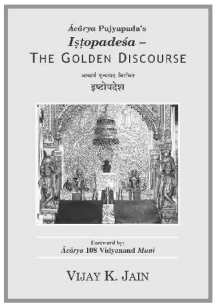

Rs. 450/-

Ācārya Samantabhadra's
Svayambhūstotra

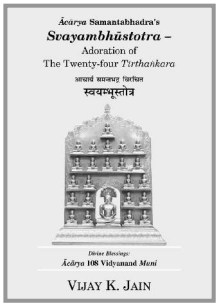

Rs. 500/-

Ācārya Samantabhadra's
Āptamīmāṃsā

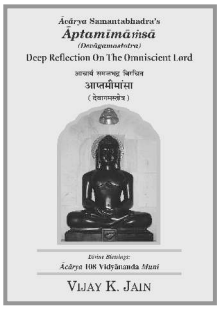

Rs. 500/-

Ācārya Samantabhadra's
Ratnakaraṇḍaka-
śrāvakācāra

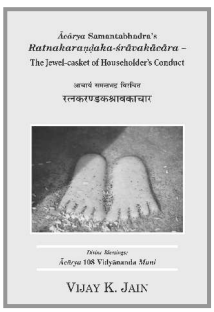

Rs. 500/-

Ācārya Pūjyapāda's
Samādhitaṅtram

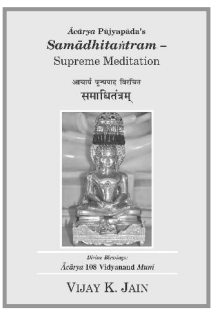

Rs. 600/-

Ācārya Kundakunda's
Pravacanasāra

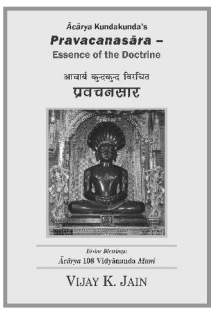

Rs. 600/-

Ācārya Umāsvāmī's
Tattvārthasūtra –
With Sarvārthasiddhi

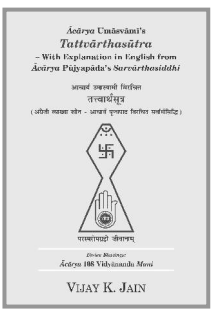

Rs. 750/-

Ācārya Kundakunda's
Niyamasāra

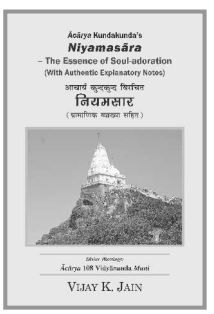

Rs. 600/-

Ācārya Guṇabhadra's
Ātmānuśāsana

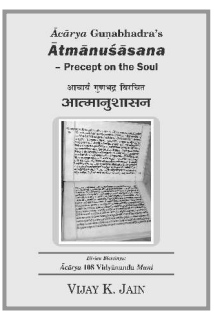

Rs. 600/-

Ācārya Kundakunda's
Pañcāstikāya-saṃgraha

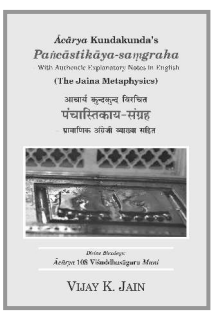

Rs. 750/-

आचार्य समन्तभद्र विरचित
युक्त्यनुशासन

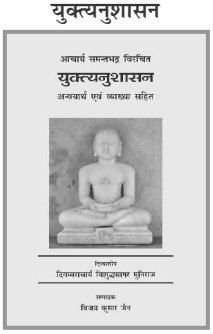

Rs. 500/-

आचार्य समन्तभद्र विरचित
स्तुतिविद्या

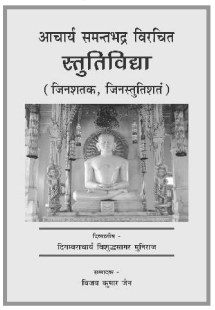

Rs. 500/-

दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर
विरचित **सत्यार्थ-बोध**

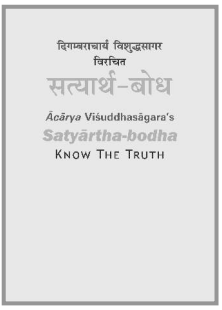

Rs. 600/-

Ācārya Māṇikyanandi's
Parīkṣāmukha Sūtra

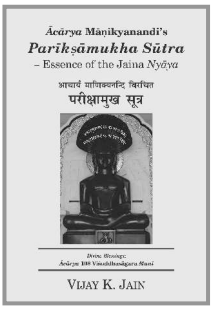

Rs. 800/-

Ācārya Kundakunda's
Bārasa Aṇuvekkhā

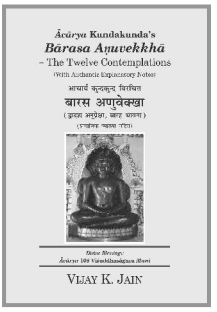

Rs. 800/-

Ācārya Pūjyapāda's
Bhakti Saṃgraha

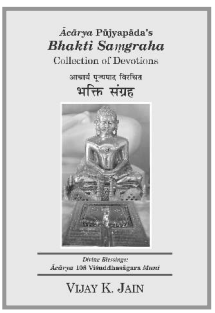

Rs. 600/-

Ācārya Kundakunda's
Samayasāra
(Second Edition)

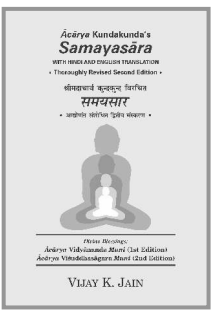

Rs. 800/-

Ācārya (Muni) Nemichandra's
Dravyasaṃgraha
(Second Edition)

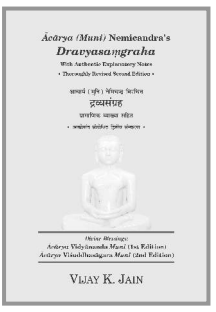

Rs. 800/-

Ācārya Mānatuṅga's
Bhaktāmara Stotra

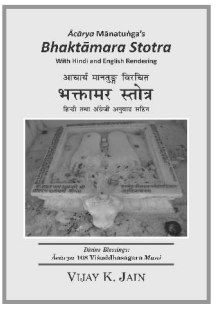

Rs. 250/-

Ācārya Kundakunda's
Rayaṇasāra

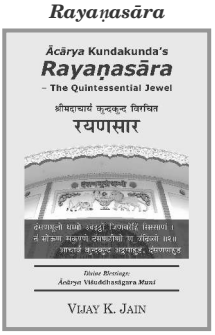

Rs. 750/-

Ācārya Kumudacandra's
Kalyāṇamandira Stotra

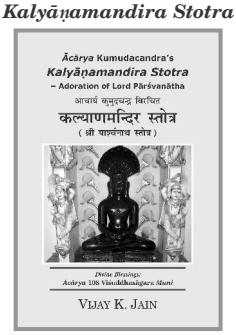

Rs. 250/-

Ācārya Devasena's
Ālāpa Paddhati

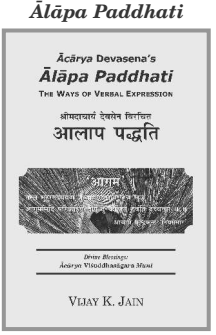

Rs. 750/-

Ācārya Vādirāja's
Ekībhāva Stotra

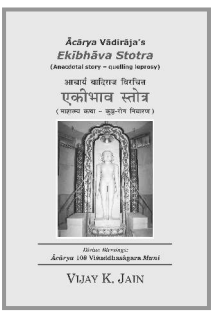

Rs. 250/-

ORDERING INSTRUCTIONS

WhatsApp:

9412057845 (Mrs. Sonal Jain Chhabra); 8923114988 (Ms. Malika Jain)

NOTES

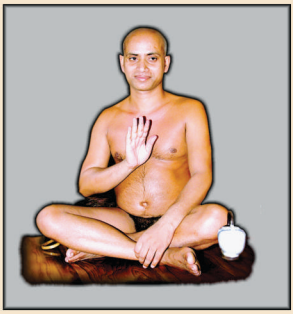

...यह चमत्कारिक महान् स्तोत्र सम्पूर्ण विश्व का कण्ठहार बने; संस्कृत-हिन्दी ही नहीं अपितु आंग्ल भाषा-भाषी भी इसका पाठ कर भक्ति-गंगा में अवगाहन कर सकें; सम्पूर्ण लोक जैन स्तोत्रों की महिमा को जानकर मिथ्या-धारणाओं से आत्मरक्षा कर सके तथा जैन-सिद्धान्त पर दृढ़ आस्था बनाकर भूतार्थ समीचीन मार्ग का आश्रय लेकर, मृषा-मार्ग से स्वयं को पृथक् कर सके; इस पावन मंगल-भावना से युक्त होकर भव-भीरु, श्रीजिन-चरण शरणानुरागी, प्रसन्नधिया, कुशल साहित्य-मनीषी, श्रीजिन-श्रुत-गुरु-चरणाम्बुज अनुरागी, भक्त-भ्रमर विद्वान श्री विजय कुमार जैन, देहरादून, ने **'एकीभाव स्तोत्र'** का अंग्रेजी में अनुवाद कर इसे विश्व स्तोत्र बना दिया है। उनकी यह श्रुत-साधना अनवरत चलती रहे...। तब तक, जब तक कण्ठ में प्राण हैं; तब-तक ही नहीं अपितु भव-भव तक इस द्वैत-अद्वैत भक्ति-भावना के प्रसाद से वे स्वात्मसिद्धि को प्राप्त करें, यही मंगल-भावना एवं शुभाशीष...।

- दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर मुनि

I have immensely benefited by reading this hymnology entitled ***'Ekībhāva Stotra'***, containing twenty-five hymns, since the last twenty-five years when I contracted a rare disease called pulmonary sarcoidosis of unknown etiology. The patients usually lose their life sooner rather than later. These hymns are built around sound reasoning based on historical facts of the *Tīrthaṅkara* and thus each hymn enhances the confidence of the devotee in its power of cure. Take for example, the fourth hymn. It describes how the floors of the palace attained golden lustre when the *Tīrthaṅkara* was residing in the womb. If so, why not my body, the seat of Yours, acquire a golden hue by getting rid of leprosy? Thus argues the poet! One would find each hymn thus argued with logic laced with the life and preachings of the *Tīrthaṅkara*.

I congratulate the learned scholar Vijay K. Jain for bringing out this book of immortal hymns to light, in three-language format. I am pretty sure the readers will reap immense joy and benefit.

– Dr. Chakravarthi Nainar Devakumar

विकल्प
Vikalp Printers

ISBN 978-93-340-9230-1
9 789334 092301